ओ३म्

प्रकाश पुञ्ज

स्मृति



पंजिका

स्व० प्रकाशवती रत्ना

प्रस्तुतकर्ता

आचार्य विद्या रत्न
२/३५, आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर
(हरिद्वार)-२४६४०७

महर्षि दयानन्द सरस्वती

एक महान प्रेरणा स्त्रोत एवम् युग प्रवर्त्तक



दयानन्द-एक महान प्रेरक, पथप्रदर्शक, निर्भीक एवं ईश्वर विश्वासी थे।

1. शैशव काल में मूलशंकर, तरुणायी में शुद्ध चैतन्य और यौवन में संन्यासी थे।
2. अखण्ड ब्रह्मचारी, पूर्ण योगी, एवम् निर्भीक विद्वान ने इस भारत की पावन भूमि पर जन्म लिया।
3. सज्जन चरित्र सिखाते हम भी, कर सकते हैं निज उज्जवल।
   जग से जाते समय रेत पर, चरण चिन्ह छोड़ निर्मल।।
4. अमतृ बेन के पुत्र ने मां की गोद में अनुसन्धान अथवा खोज का अमृत पाया।
5. शिवरात्री की रात के दृश्य से विचित्र बोध प्राप्त कर, सच्चे शिव की खोज का निर्णय लिया। इस अन्वेषण के द्वारा वैज्ञानिक शक्ति से जीवन को पल्लवित किया।

डॉ० श्री धर्मपाल जी कुलपति, की सेवा में

6. स्वामी पूर्णानन्द से संन्यास लिया और स्वामी विरजानन्द जी द्वारा वैदिक व्याकरण में सिद्धस्थ हुए।
7. राम ने राक्षसों और अन्त में रावण का वध किया। महर्षि दयानन्द ने शास्त्रार्थ जैसे अस्त्रों और वैदिक ज्ञान जैसे शास्त्रों से रूढ़िवादिता, अन्ध विश्वासों, मूर्ति पूजा का घोर विरोध करते हुए जनता में नव जागरण का बिगुल बजाया।
8. महान योगी बनकर, राम, कृष्ण और चाणक्य की श्रेणी में अग्रदूत बने।
9. गुरु विरजानन्द जी सरस्वती को दिए वचन को पूरा करने के लिये भारतवर्ष में आर्ष ग्रन्थों का प्रचार, मानसिक दासता से छुटकारा, वेद सम्पूर्ण ईश्वरीय ज्ञान को सिद्ध करना, अभ्युदय (worldly Prosperity) व निःश्रेयस (मुक्ति-Salvation) के समन्वय का प्रचार, स्वराज्य, सुराज्य, स्वदेशी, एक भाषा, शिक्षा में समानता, नारियों और हरिजनों को शिक्षा और वेद पढ़ने के अधिकार जैसे ठोस विचार दिये।
10. मनुर्भव-मानवता को सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त किया।
11. विक्टोरिया के हुए दिल्ली दरबार के समय धर्मावलम्बियों के बीच भारत की एकता का प्रस्ताव रखा।
12. वेद को ईश्वर प्रदत्त, शाश्वत, सार्वभौम, विवेकी, वैज्ञानिक, अजातीय व स्वयं में प्रमाण सिद्ध किया।
13. 1875 में बम्बई नगर में आर्यसमाज की स्थापना की और लाहौर में इसके दस नियमों को अन्तिम रूप दिया।
14. दर्शनों का रचनात्मक स्वरूप दिया- जैसे दयानन्द का आर्ष ग्रन्थवाद, खण्डन-मण्डन आदि का मौलिक प्रयोजन, भक्तिभाव, सामाजिक दृष्टिकोण, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रवाद, आर्थिक चिन्तन, जीव के वर्णाश्रम की व्यवस्था, योगादि के अनमोल दर्शन दिये।
15. राजाओं-महाराजाओं के गढ़ों में जांकर उनमें धार्मिकता, पवित्रता और जनता की सेवा का प्रचार किया।
16. सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, संस्कार विधि, वेद भाष्य, आर्याभिविनय, पंचमहायज्ञ, गोकरुणानिधि, स्वमन्तव्यामन्तव्य, व्यवहार भानु, आर्योद्देश्य, रत्नमाला, शास्त्रार्थ आदि जैसे अनमोल ग्रन्थ दिये।
17. अन्त में मृत्यु पर विजय के दृश्य से पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी को नास्तिक से आस्तिक बना दिया। स्वामी जी के अन्तिम शब्द थे-"प्रभु! तुमने अच्छी लीला की। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।" ऐसा कहकर अन्तिम श्वास छोड़े।

ओ३म्

प्रकाश पुञ्ज

स्मृति पंजिका



स्व० प्रकाशवती रत्ना

(जन्म ७ दिसम्बर १९२८ | देहावसान १९ फरवरी २०००)

(स्वर्गीया श्रीमती प्रकाशवती रत्ना के सम्बन्ध में प्राप्त श्रद्धांजलियां, उनके द्वारा दिये गये कुछ अविस्मरणीय प्रवचन, उनके प्रिय भजन, आकाशवाणी पर दी गई कुछ वार्ताएं, प्रवचनों के आधारभूत कुछ कथानक तथा विविध प्रकरण)

प्रस्तुतकर्ता

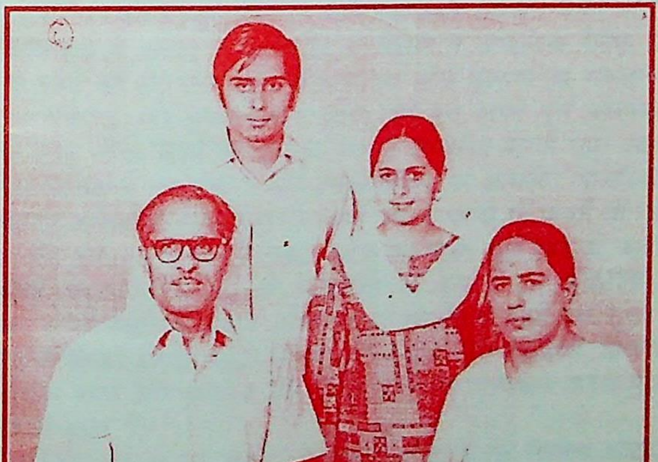
आचार्य विद्या रत्न
२/३५, आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर
(हरिद्वार) २४९४०७

15
विद्या-प

अनुक्रमणिका



प्रथम सन्तान के साथ प्रकाशवती रत्ना



अपनी दोनों सन्तानों तथा पति के साथ प्रकाशवती रत्ना

आमुख

जिस व्यक्तित्व को बाल्यकाल से अंग्रेज़ी और उर्दू के विद्वान और शायर पिता के रूप में स्वर्गीय श्री मनी राम कालड़ा, माता के रूप में विदुषी स्व0 श्रीमती मोहन देवी, योग्य बड़े भाई स्व0 बलवन्त राय कालड़ा, प्रसिद्ध चिकित्सक डा. कृष्ण कुमार, भाभी डा. प्रतिभा कुमार, योग्य बहन श्रीमती सन्तोष और उनके परिवार मिले हों, शिक्षा की दृष्टि से भारत के प्रसिद्ध विद्वान और वेदों के प्रकाण्ड पण्डित एवम् अन्वेषक विद्वान (Vedic Research Scholar) पं0 भगवत दत्त जी की शिष्या होने का सौभाग्य मिला हो, १९४७ में विवाह होने के तुरंत बाद देश विभाजन के पश्चात् अगस्त ४७ से ७ नवम्बर ४७ तक वीरता के साथ पाकिस्तानियों द्वारा प्रस्तुत भयावह स्थिति का सामना करते हुए भारत पति के परिवार सहित पहुंची हों, शनैःशनैः शिक्षिका होने के साथ-साथ हाईस्कूल से लेकर कानपुर विश्वविद्यालय से प्राचीन इतिहास में महिला परीक्षार्थियों में प्रथम श्रेणी प्राप्त करते हुए एम.ए. में प्रथम स्थान लिया हो, एक प्रसिद्ध इंजीनियर बेटे, योग्य बहू (पुत्रवधू), राजकीय सेवा में रत चिकित्सालय अधीक्षिका बेटी तथा प्रसिद्ध नेत्र विशेषज्ञ (दामाद) की मां बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो एवम् योग्य देवर-देवरानियों, ननदों तथा उनके परिवारों के मिलने का श्रेय मिला हो, राजकीय कन्या इण्टर कालेज की प्रधानाचार्या के पद से सेवा निवृत्त होकर दिल्ली में एक आर्य पब्लिक स्कूल का दो वर्ष तक संचालन करके अपने पति के साथ आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर (हरिद्वार) में १९८९ में सदस्यता लेली हो और प्रतिष्ठित ब्रह्मा रही हों, आकाशवाणी इलाहाबाद और नजीबाबाद में अनगिनत वार्ताएं, परिचर्चायें और ग्रामीण महिलाओं को सन्देश देने में तत्पर रही हों, अनेक गोष्ठियों, ग्राम एवम नगर प्रचार के लिये सदा उद्यत रही हों, अपने जीवनकाल में और विशेष रूप से आश्रम में उच्चकोटि के वैदिक व सामाजिक नैतिक प्रवचनों की प्रसिद्धि प्राप्त की हो, भला ऐसे व्यक्तित्व को कैसे भुलाया जा सकता है।

वह डायबिटीज़ और हृदय रोग से ग्रस्त रहते हुए अपने पूर्ण आत्मबल की बैसाखी पर सदैव अपने कार्यों को सुचारू रूप से सम्पादित करती रहीं। आश्रम के सर्वांगीण कार्यकलाप में सदा अग्रणी रहीं। इनकी साधना पर आधारित आन्तरिक शक्ति और कार्यक्षमता उच्चकोटि की थी। कभी-कभी भविष्य वाणी भी करती थीं जो प्रायः सत्य होती थी। इन्हें दूसरों की मानसिक प्रवृत्ति का कुछ-कुछ ज्ञान हो जाता था।

इसलिये अपर्याप्त होते हुए भी श्रद्धांजलि के रूप में इस **प्रकाश पुञ्ज** *पुस्तिका को उनकी स्मृति में अथवा अपने मन के सन्तोष के लिये एक सूक्ष्म प्रयास मात्र है जबकि उनकी श्रेष्ठता कहीं अधिक थी। सौहार्द्र भरी मधुवाणी, हिरण्यवाणी, ऋतवाणी, मित्त वाणी और सोमामृत ब्रह्म निष्ठ वाणी का मूल्यांकन करना मुझ जैसी अल्प बुद्धि से बाहर है।*

यह पुस्तिका प्रभु से इस प्रार्थना के साथ समर्पित है कि दिवंगत आत्मा जिस मानव शरीर को धारण करें वहां उन्हें सुख, शांति, सौहार्द्र से भरा वातावरण मिले जिसमें वह अपने अधूरे कार्यों, इच्छाओं और उदात्त भावनाओं को मूर्त रूप दे सकें।

विद्यारत्न

२/३५, आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर (हरिद्वार)

आर्य समाज, मालवीय नगर, नई दिल्ली में श्रीमती प्रकाशवती रत्ना की स्मृति में शांति यज्ञ

16.2.2000 को अपनी प्रवचन शृंखला के अन्तिम प्रवचन को व्यास पीठ पर जैसे ही समाप्त किया, हृदय की पीड़ा ने घेर लिया। बेहोश हो गयीं। राम कृष्ण मिशन अस्पताल, कनखल ज्वालापुर में डाक्टरों के अनथक परिश्रम के बाद भी दशा को देखते हुए 18.2.2000 को दिल्ली मूलचन्द अस्पताल में ले जाना पड़ा। 19.2.2000 दोपहर देहावसान हो गया। मालवीय नगर, नई दिल्ली की शमशान भूमि, जहां पर 1996 में प्रिय पुत्र की अन्त्येष्टि हुई थी, वहीं स्वयं प्रकाशवती रत्ना की अन्त्येष्टि हुई।

दिनांक 22.2.2000 को आर्य समाज, मालवीयनगर के विशाल हाल में शांति यज्ञ हुआ और श्रद्धांजलियां अर्पित की गईं। हाल और समाज के प्रांगण में अनगिनत पुरुष और महिलाओं के बीच, पं0 मदन मोहन जी शास्त्री के संयोजकत्व में महान प्रचारक डा. प्रेमचन्दजी श्रीधर, स्वामी निर्वृत्तानन्दजी, पं0 मदन मोहन शास्त्रीजी संरक्षक, डॉ. योगानन्द जी शास्त्री, मंत्री दिल्ली सरकार, श्री चित्राजी, मंत्री सनातन धर्म सभा मालवीयनगर, श्री लखीरामजी कटारिया, श्रीमती भसीनजी, दीदी डा. प्रतिभा कुमार जी, श्रीमती शकुन्तला चौधरी जी आदि ने भावभीनी श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। कुछ आर्य समाजों के शोक प्रस्ताव भी पढ़े गये।

दिनांक 23.2.2000 को आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर (हरिद्वार) के घाट पर अस्थि विसर्जन हुआ और आश्रम में शांति यज्ञ हुआ जिसे गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के विख्यात प्रोफ़ेसर डा. महावीर जी ने सम्पन्न किया। इस अवसर पर आश्रम के माननीय स्वामी आत्म बोधजी, डा. राम नाथ जी भूतपूर्वक उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, श्री देवराज अध्यक्ष जिला आर्य उपप्रतिनिधि सभा, हरिद्वार, आचार्य धर्मवीर, मानव कन्याण केन्द्र देहरादून की, आचार्या अन्नपूर्णा जी एवं कुलपति, द्रोण कन्या गुरुकुल, डॉ. वेद प्रकाश शास्त्री जी, देहरादून व कुछ अन्य महिलाओं ने अपनी श्रद्धांजलियां प्रस्तुत कीं। सभा स्वामी आत्म बोधजी की अध्यक्षता में हुई।

आचार्य विद्या रत्न ने सबका धन्यवाद प्रकाशन किया।

-प्रस्तुतकर्ता

वैदिक विदुषी प्रकाशवती की अस्थियां गंगा में विसर्जित

दैनिक जागरण २४.२.२०००

आर्य जगत् की वैदिक विदुषी प्रकाशवती रत्ना की अस्थियों का वैदिक मंत्रों के साथ आर्य वानप्रस्थ आश्रम के घाट पर विसर्जन किया गया। विसर्जन उनके पोते सुहास ने किया। इस अवसर पर भारी संख्या में विभिन्न आर्य संस्थाओं के सदस्य उपस्थित रहे।

इस अवसर पर आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। गुरुकुल विश्वविद्यालय के पूर्व उपकुलपति प्रो. रामनाथ वेदालंकार ने इस अवसर पर कहा कि व्यक्ति द्वारा किए गए सद्कार्य और उसके गुण ही उसे इस धरती पर स्मरणीय बनाते हैं। स्वामी आत्मबोध सरस्वती ने कहा कि जीवन चक्र का सरल एवं सुखदायी बनाने के लिए मनुष्य को आश्रम व्यवस्था का पालन करना चाहिए। आचार्य सत्यव्रत राजेश ने कहा कि मृत्यु किसी को नहीं छोड़ती है। प्रो. महावीर शास्त्री ने कहा कि प्रकाशवती रत्ना वेदों का प्रकाश करने वाली महिला थीं।

प्रो.पी.एस. चौहान ने कहा कि उन्होंने वैदिक सिद्धांतों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत किया। ज़िलामंत्री देवराज ने कहा कि प्रकाशवती रत्ना किसी भी कार्य को पूरी तन्मयता और समर्पण भावना से पूरा करती थीं। इनके अतिरिक्त डा. वेद प्रकाश गुप्ता, डा. अन्नपूर्णा, ब्रह्मचारिणी इन्दु, सरोज आर्य, आचार्य धर्मवीर, रमा भल्ला, निर्मला गुप्ता, डा. मदन मोहन, अश्विनी कुमार मित्तल, संस्था के प्रधान डा. कृष्णदेव ने भी अपने श्रद्धासुमन अर्पित किये।

प्रकाशवती रत्ना की अस्थियां गंगा में विसर्जित

अमर उजाला २४.२.२०००

वैदिक विदुषी प्रकाशवती रत्ना की अस्थियां वैदिक मंत्रोच्चार के बीच आर्य वानप्रस्थ आश्रम घाट पर गंगा में विसर्जित कर दी गई। अस्थि विसर्जन उनके पोते सुहास ने किया। इस अवसर पर विभिन्न आर्य संस्थाओं के सदस्य उपस्थित थे। प्रो. महावीर शास्त्री ने कहा कि प्रकाशवती रत्ना वेदों का प्रकाश फैलाने वाली महिला थीं।

मूलचन्द हास्पिटल दिल्ली में उनका निधन हो गया था। उनका अंतिम संस्कार मालवीय नगर में कर दिया गया था। उनके पति आचार्य विद्यारत्न परिजनों के साथ अस्थियां लेकर ज्वालापुर पहुंचे। आर्य वानप्रस्थ, ज्वालापुर में श्रद्धाजंलि सभा का आयोजन किया गया, जहां अनेक लोगों ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। गुरुकुल विश्वविद्यालय के पूर्व उपकुलपति प्रो. रामनाथ वेदालंकार ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि व्यक्ति द्वारा किए गए सद्कार्य और उसके गुण ही उसे स्मरणीय बनाते हैं। स्वामी आत्मबोध सरस्वती ने कहा कि जीवन चक्र को सरल एवं सुखदायी बनाने के लिए आश्रम व्यवस्था का पालन करना चाहिए। आचार्य सत्यव्रत राजेश ने कहा कि मृत्यु किसी को नहीं छोड़ती है। इसलिए जीवन में परोपकार करते हुए अमरत्व को प्राप्त करना चाहिए। प्रो.पी.एस.चौहान ने कहा कि उन्होंने वैदिक सिद्धांतों के अनुसार जीवन व्यतीत किया। ज़िला मंत्री देवराज ने कहा कि वे किसी भी कार्य को पूरी तन्मयता और समर्पण भाव से करती थीं। इनके अलावा डा. वेद प्रकाश गुप्ता, डा. अन्नपूर्णा, ब्रह्मचारिणी इंदु, सरोज आर्या, आचार्य धर्मवीर, रमा भल्ला, निर्मला गुप्ता, डा. मदन मोहन, अश्वनी कुमार मित्तल, संस्था के प्रधान डा. कृष्णदेव ने भी अपने श्रद्धासुमन अर्पित किए।

इससे पूर्व प्रो. महावीर शास्त्री एवं ब्रह्मचारिणी इंदु ने शांति यज्ञ सम्पन्न कराया। शांतिकरण के विशेष मंत्रों से आहुतियां डाली गईं। सभा का संचालन रमेश चंद मित्तल ने किया। आचार्य विद्यारत्न ने आभार व्यक्त किया।

(दोनों श्री देवराज, सदस्य पत्रकार समिति, हरिद्वार के सौजन्य से)

श्रद्धांजलियां

(गद्यांजलि एवम् पद्यांजलि) विद्वानों द्वारा

श्रीमती प्रकाशवती रत्ना का पुण्य स्मरणम्

–पद्मश्री डॉ. कपिल देव द्विवेदी
निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद् (भदोई), ज्ञानपुर

(१)

प्रकाशवत्या गुणगौरवस्य
न वर्णनं शक्यत एवं कर्तुम्।
साध्वी प्रिया सत्यपरा वदान्या
अभूत् समेषामपि प्रेमपात्रम्।।

श्रीमती प्रकाशवती रत्ना के गुण गौरव का वर्णन करना संभव नहीं है। वे साधु स्वभाव, प्रिय, सत्यनिष्ठ और उदारचित्त थीं। वे सभी की प्रेमपात्र थीं।

(२)

सा शिक्षिका शिक्षणकार्यदक्षा
यज्ञादिकृत्ये निपुणा वरिष्ठा।
स्वज्ञान-वैदुष्य-गुणानुरोधाद्
ब्रह्मत्वमास्थाद् विविधाध्वरेषु।।

श्रीमती रत्ना एक शिक्षिका थीं और शिक्षण कार्य में निपुण थीं। वे यज्ञ आदि कराने में दक्ष थीं, वरिष्ठ थीं। उन्होंने अपने ज्ञान, विद्वत्ता और गुणों के आधार पर अनेक यज्ञों में ब्रह्मा का स्थान ग्रहण किया।

(३)

पतिव्रता सा गृहकार्यदक्षा
आतिथ्यभावं हृदि संन्यधत्त।
पत्युर्निदेशं पति-सौख्यमेव
प्राथम्यभावेन व्यधात् सदैव।।

श्रीमती रत्ना पतिव्रता थीं, गृहकार्यों में दक्ष थीं। उनके हृदय में अतिथि सत्कार का सब बद्धमूल था। वे पति के आदेश को और पति के सुख को प्राथमिकता के आधार पर करती थीं।

(४)

सा वानप्रस्थाश्रममेत्य नित्यं
स्वाध्याय-यज्ञादिषु व्यापृताऽभूत्।

वेदादि-शास्त्राध्ययने प्रवृत्ता
सा साधनामेव धनं प्रपेदे॥

श्रीमती रत्ना वानप्रस्थ आश्रम में आकर स्वाध्याय और यज्ञ आदि कार्यों में संलग्न रहती थीं। वेद और शास्त्रों के अध्ययन में तत्पर वे साधना को ही धन मानती थीं।

(५)

स्व-शील-सौहार्द-सहानुभूत्या
चेतोऽहरद् आश्रमवासिनां सा।
याता दिवं स्वीय-यशः प्रतापाद्
विराजते सा भुवि सर्वदैव॥

श्रीमती रत्ना ने अपने मृदु-स्वभाव, प्रेम और सहानुभूति के द्वारा सारे आश्रमवासियों का मन हर लिया था। वे दिवंगत होकर भी अपने यश के प्रताप से सदा संसार में विराजमान रहेंगी।

श्रीमती रत्ना जी रत्न बाँटते-बाँटते विदा हो गयीं

-आचार्य रामनाथ वेदालंकार

अवकाश प्राप्त, उपकुलपति, गु0कां0 वि0

ऋग्वेद में प्रकाशवती या ज्योतिष्मती नाम उषा का है। उषा से एक तो प्रभातकालीन प्राकृतिक उषा ग्रहीत होती है, दूसरे स्वामी दयानन्द सरस्वती ने उषा का अर्थ विदुषी नारी भी किया है। प्राकृतिक उषा भौतिक प्रकाश से युक्त होती है और विदुषी नारी ज्ञान-प्रकाश से परिपूर्ण होती है। वेद में यह भी लिखा है कि उषा मानवों को रत्न बांटती है। प्राकृतिक उषा मानवों को भौतिक प्रकाश, जागृति, स्फूर्ति आदि रत्न प्रदान करती है और विदुषी नारी सदुपदेश एवं सद्गुण रूप रत्न बाँटती है।

हमारी आज की नायिका स्व० प्रकाशवती रत्नाजी भी ज्ञान-प्रकाश एवं सद्गुण-रूप रत्न बाँटती रहीं। रत्न वही बाँट सकता है, जिसने रत्न अर्जित किये हों। रत्ना जी निरन्तर ज्ञान-प्रकाश तथा सद्गुण अर्जित करती रहीं। उन्हें इस बात का गर्व था कि वे सुप्रसिद्ध वैदिक अनुसन्धानकर्ता पं० भगवद्दत्तजी की शिष्या रह चुकी थीं। उनसे उन्होंने वेदों के प्रति निष्ठा, भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम और स्वदेशभक्ति का पाठ पढ़ा था।

आपका जन्म जनपद मियांवाली के बक्खर ग्राम में ७ दिसम्बर १९२८ को हुआ। जब आपका विवाह हुआ, तब आप केवल प्रभाकर परीक्षा उत्तीर्ण थीं। देश-विभाजन के पश्चात् उनके पति श्री विद्यारत्न जी जब मवाना (जनपद मेरठ) में विद्यालय निरीक्षक नियुक्त होकर आ गये, तब वहीं रत्ना जी ने अधिकाधिक विद्यार्जन की लालसा के कारण धीरे-धीरे हाई स्कूल,

इण्टरमीडिएट, बी०ए०, एम०ए० तथा एल०टी० परीक्षाएं उत्तीर्ण कर लीं। देश विभाजन के बाद मवाना में ही सरकारी स्कूल में हिन्दी की शिक्षिका नियुक्त कर ली गयीं और उन्होंने छात्र-छात्राओं को ज्ञान-विज्ञान एवं सदाचार के रत्न बाँटने आरम्भ कर दिये। आप गवर्नमेंट नार्मल स्कूल मेरठ में अध्यापिका तथा गवर्नमेंट इंटर कालेज टूँडला में प्रधानाचार्या भी रहीं। वहाँ एक उत्कृष्ठ शिक्षिका तथा उत्कृष्ठ प्रशासिका के रूप में आपकी ख्याति रही। पति श्री पं० विद्यारत्न जी भी १९७८ में उत्तर प्रदेश शिक्षा बोर्ड इलाहाबाद के उपसचिव पद से अवकाश प्राप्ति के पश्चात् आपके पास ही आ गये। १९८५ में रत्नाजी ने कानपुर विश्वविद्यालय से इतिहास एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति विषय में एम०ए० परीक्षा उत्तीर्ण की, जिसमें सम्पूर्ण महिला परीक्षार्थियों में विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया। जब एम०ए० परीक्षा उत्तीर्ण की, तब आप दादी और नानी दोनों बन चुकी थीं। उच्च शिक्षा प्राप्ति के प्रति अनुराग ने ही इतनी बड़ी अवस्था में आपको विश्वविद्यालय की छात्रा बनाया।

१९८९ में पति-पत्नी दोनों आर्य संन्यास-वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर में साधक बनकर आ गये। दोनों ने ही लगन के साथ आश्रम की गतिविधियों पर अधिकार कर लिया। रत्ना जी ने आश्रम में होने वाले यज्ञों का ब्रह्मा पद ऐसे उत्तरदायित्व के साथ संभाला कि ये आश्रम की ब्रह्मा बनने वाली प्रमुख विदुषी माताओं में गिनी जाने लगीं। इनके प्रवचन बहुत शिक्षाप्रद, मनोरम और हृदयगामी होते थे। प्रवचन आप स्वाध्यायपूर्वक करती थीं, अत: उनमें बहुत सी ग्राह्य बातें होती थीं। आपकी प्रवचनों की शैली भी अत्यन्त मनोहारिणी थी, जिससे श्रोतागण ऊबते नहीं थे, ऐसी इच्छा होती थी कि अभी और बोलती रहें। आश्रम में आपने कई गोष्ठियां भी करायीं, जिनमें महिलाएं भाग लेती थीं, श्रोताओं में पुरुष भी रहते थे। आप ज्वालापुर, बी०एच०ई०एल०, हरिद्वार आदि की स्थानीय आर्य समाजों में उपदेश एवं प्रवचन करती थीं। नजीबाबाद आदि के आर्य समाजों में भी भाषणार्थ एवं वेद प्रचारार्थ निमन्त्रित की जाती थीं।

हरिद्वार नगर में पारिवारिक सत्संगों का आयोजन आप बहुत काल तक निष्ठापूर्वक करती रहीं। जिनमें परिवारों में यज्ञ, उपदेश एवं भजनों का अनुष्ठान होता था। समीपस्थ ग्रामों में वेद प्रचार का आयोजन भी आप सफलतापूर्वक करती रहीं भारत विकास परिषद-हरिद्वार-भेल-ज्वालापुर की आप सक्रिय सदस्या थीं। उनमें प्रश्नमंचों के आयोजन में आप निर्णायिका बनती थीं, जबकि आपके पति श्री पं० विद्यारत्न जी प्रश्नकर्ता होते थे। इस परिषद् की ओर से आप महिला गोष्ठियों का आयोजन भी करती रहीं।

16 फरवरी 2000 को जब आप अस्वस्थ हुईं, तब भी आश्रम की व्यास पीठ से भाषण ही कर रही थीं। चिकित्सार्थ आपको दिल्ली ले जाया

गया। वहाँ मूलचन्द हास्पिटल में आपको दो हृदयाघात हुए। 19 फरवरी को विधाता ने इन्हें हमसे छीन लिया। देवगति को कोई टाल नहीं सकता।

वे स्वहित की अपेक्षा परहित को अधिक महत्व देने वाली समाजसेविका थीं। अपने तथा अपने पति के चिररोगाक्रान्त होते हुए भी यज्ञ, प्रवचन आदि सामाजिक कार्यों से विमुख होने की बात उन्होंने कभी मन में सोची भी नहीं। पुत्र तथा भाई के असामयिक क्रूर देहान्त ने उन्हें जर्जर कर दिया, फिर भी कर्तव्य से उन्होंने मुंह नहीं मोड़ा। वे सरलस्वभाव, हंसमुख, ईश्वरभक्त, धर्मपरायण, तपोनिष्ठ, कर्मठ, सिद्धस्तप्रिय, विदुषी, जनसेविका थीं। उनके हृदय में सबके प्रति अनुराग था। उन्होंने अपने परिश्रम से स्वयं को साधा था, विद्यार्जन किया और कराया था, अनेकों का चरित्र निर्माण किया था। उनकी याद हम सबके मनों में चिरस्थायिनी रहेगी।

अन्त समय में उनके पति आचार्य विद्यारत्न जी ने, पुत्री श्रीमती नूतन मेंहदीरत्ता ने जामाता डा० चन्द्र प्रकाशजी व भाई डा. कृष्ण कुमार जी एवं पुत्रवधु नीलम रत्ना ने दिन-रात एक करके उनकी सेवा की, चिकित्सकों ने भी पूरा सहयोग दिया। आश्रम के कुछ साधकों एवम् साधिकाओं ने भी अन्त तक सेवा का उज्जवल और प्रंशसनीय उदाहरण प्रस्तुत किया। सहयोग और सहायता प्रदान की जिसे कभी नहीं भुलाया जा सकता, किन्तु फिर भी वे बलात् हमसे छिन गयीं। विधाता को यही स्वीकार था। उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि।

ओ३म्

अमर ज्योति आचार्या रत्ना

डॉ. प्रेमचन्द श्रीधर
आर्य समाज ह्यूस्टन (यू.एस.ए.)

ऋषि भक्त आचार्या बहिन रत्ना मेरी दृष्टि में वह अमर ज्योति थीं, जो नश्वर देह के न रहने पर भी अपनी प्रकाश की ज्योतितमान किरणें लाखों-लाखों आने वाली मानव पीढ़ियों को निरन्तर देती रहेंगी। वह प्रकाश की किरणें उनके सम्पूर्ण जीवनकाल में अनेकों को प्रकाशित कर गईं। वह प्रकाश की रश्मियाँ, ज्ञान के आलोक से पूर्ण थीं। ऐसी जीवात्माएँ, किसी विशेष प्रयोजन के साथ आती हैं। अपने पूर्वजन्म के कर्मों का सब सम्बन्ध तो निश्चित रूप से निभाती हैं ही, परन्तु देह छोड़ने से पूर्व अपनी मधुर स्मृति अनेक आत्माओं के हृदय पटल पर छोड़ जाती हैं। ऐसी आत्माओं में मृत्यु का भय शेष नहीं रहता। कौन है जिसे मृत्यु का भय नहीं सताता? भर्तृहरि के वैराग्यशतक का एक सुन्दर श्लोक स्मरण आ रहा है:

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुष बहुमानो विगलितः
समाना स्वर्याताः सपदि सुहृदो जीवितसमाः।
शनैर्यष्टयोत्थानं घनतिमिरुद्ध च नयने
अहो! जीर्णः कायस्तदेवि भरणापायचकितः॥
-वै०श० ९

जिस व्यक्ति की भोग की इच्छाएँ समाप्त हो चुकी हैं, जिसका कोई सम्मान नहीं रहा, एक-एक करके जिसके सब मित्र छोड़ गए हों। प्रारब्ध ही जिसके केवल मित्र हों, जब वह उठता है तो लाठी का आश्रय लेता है और जिसकी आंखों में अन्धेरा छाने लगता है। हाय, ऐसा व्यक्ति भी मृत्यु के नाम मात्र से चकित हो उठता है। वह भी मरना नहीं चाहता।

ऊपर जो बातें भर्तृहरि के श्लोक में आई हैं उनमें प्रथम को छोड़कर क्योंकि अब वह पूर्ण रूप से अपने पतिदेव की वृद्धावस्था में सेवा करते हुए एक आध्यात्मिकता का वानप्रस्थ का जीवन व्यतीत कर रही थीं, एक भी अन्य बात उनके जीवन पर लागू नहीं होती थी। वह अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक गतिमान रहीं। उनके जीवन में ''अदीना स्याम'' साक्षातरूप से घटित हुआ। किसी को अपना आश्रय दिया तो सही, आश्रय लेना पड़ा हो, ऐसा अवसर ही नहीं आया। लगता है, जैसे सहर्ष मृत्यु का वरण किया हो। हां, आयु के साथ देह क्षीणता तो स्वाभाविक सृष्टि का नियम है। जीवन के सन्ध्याकाल में कुछ अनहोनी सांसारिक घटनाओं, कठिनाईयों का कौन है जिसे सामना न करना पड़ा हो? इनका भी शरीर पर प्रभाव तो पड़ता है परन्तु ज्ञान की गरिमा से चैतन्यता अत्यन्त साहस और सूझबूझ की इस साक्षात देवी ने जो अपने धैर्य का परिचय दिया वह भी एक अनुपम उदाहरण है। उनके जीवन में वेद के मन्त्र की सूक्ति सत्य घटित होती है-

यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ यजु० २५/१३

उसके आश्रय का सुख और अभाव में दुःख दोनों को जिसने अमृत के रूप में ग्रहण किया और सदैव उस सुख स्वरूप की अत्यन्त भक्ति भावना से उपासना प्रार्थना की। अन्तिम रूप से उसी प्यारे को अपनी नश्वर देह शान्ति के साथ सौंप दी। ऐसी ईश्वर की इच्छा में जीने वाली थीं, मेरी रत्ना बहिन।

उनका समस्त परिवार आचार्यप्रवर श्री विद्यारत्न जी, श्री पं० मदन मोहन जी शास्त्री, श्री मनोहर जी विरक्त, कुल की अन्य देवियाँ, सभी बच्चे परम विद्वान, सेवाभावी, दानी, अत्यन्त मधुर और विनम्र स्वभाव के हैं। उन

सबसे मिलना, कुछ क्षण उनके संग बिताना भी अपने लिए पुण्यों के संग्रह से कम नहीं है। आर्यसमाज मालवीय नगर की स्थापना से लेकर उसके अत्यन्त शीघ्र विकसित होने, यश अर्जित करने का श्रेय इसी परिवार को है। इस आर्य समाज का अपना एक विद्यालय है। उनकी सूत्रधार भी बहिन आचार्या रत्ना ही थीं। आज भी उसके पुष्पित होने की सुगन्धी से सब लाभान्वित हो रहे हैं।

यज्ञ प्रेमी और प्रखर वक्ता के रूप में वह आर्यसमाज में अपना विशिष्ट स्थान रखती थीं। मुझे स्मरण है एक बार वह हमारे 'देहरादून मानव कल्याण केन्द्र (वैदिक आश्रम)' के वार्षिक उत्सव में यज्ञ की ब्रह्मा बनीं। उनके भक्ति रस से सने वेद मन्त्रों पर आधारित व्याख्यान मन्त्रमुग्ध कर देते थे। परम आदरणीय आचार्य विद्या रत्न जी की जीवन संगिनी होने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त था। दोनों ने मिलकर आर्ष ग्रन्थों की विस्तृत व्याख्या करने वाले जो बड़े आकार के सुन्दर व्यवस्थित कपड़े पर मानचित्रों की शैली में प्रदर्शिनी लगाई, उसे जिसने भी देखा, स्तब्ध रह गया। आर्षग्रन्थों को समझाने की वह अद्भुत कला इसी ऋषि भक्त दम्पति ने ही अपनाई। वैदिक परम्परा की ओर कौन होगा जो उसे देखकर आकर्षित नहीं होगा? अपने जीवन की परिश्रम पूर्ण पूंजी का बहुत बड़ा भाग इन्होंने इसी पर व्यय कर दिया। एक सच्चे वैदिक धर्म के प्रचारकों में वह अग्रगण्य महिला का नाम अंकित करा गईं।

उनकी वाणी का माधुर्य कोकिलकण्ठ से निकलती हुई उनकी प्रिय कविताएँ, वेदमन्त्र और उनकी सहज सरल व्याख्या आने वाली पीढ़ियों के लिए अनुकरणीय हैं, स्तुत्य हैं। वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में उन्होंने अनेक वर्षों तक आध्यात्मिक प्रचार-प्रसार का दायित्व सम्भाला। उन्हें देहरादून मानव कल्याण केन्द्र (वैदिक आश्रम) से भी पूर्ण लगाव था। राष्ट्रभक्ति और अपनी संस्कृति एवं धर्म की सेवा उनका इष्ट था।

बहिन रत्ना के गुणों की मेरी लेखनी के शब्द चर्चा कर सकते हैं, ऐसा मैं नहीं मानता, शब्दों में वह क्षमता कहां है? जो उनकी ममता में थी, अपनत्व में थी। ऐसी मेरी परम साध्वी बहिन को जिसने भले ही गेरुवे वस्त्र न बदलें हों, शत-शत प्रणाम। मेरी भावपूर्ण, अश्रुपूरित नेत्रों की, हृदय, मन, प्राण और आत्मा से श्रद्धाञ्जलि स्वीकार हो। हजारों मील दूर बैठा अमेरिका से अपनी बहिन की स्मृति में और कर भी क्या सकता हूँ।

धन्य हो, बहिन रत्ना धन्य हो, मेरा स्नेहपूर्ण प्रणाम स्वीकार करो।

मृत्यु और अमरता

डॉ. प्रेमचन्द श्रीधर (अमेरिका)

तुम हो शाश्वत नियम जगत् का,
कौन नहीं है तुम से परिचित।
तुम लगती हो क्रूर, परन्तु हो कृपालु भी,
हर लेती हो देह जीव का, पर तुम,
पुनर्जन्म का अवसर देती, हो दयालु भी।।१।।

आना-जाना, जाना-आना,
यह सृष्टि का, अटल नियम है।
हर सर्जन के बाद प्रलय होती आई है,
हर फल में फिर बीज छिपा है उगजाने को।
सविता भी तो अस्ताचल में जाते हैं,
फिर-फिर आने को।।२।।

और सांझ होती है, सारा नभ मण्डल,
भर जाता है अन्धकार से।
केवल तारागण ही कुछ टिमटिमाते,
कुछ जगमगाते यह आश्वासन देते रहते हैं।
टिका नहीं है कभी अन्धेरा,
फिर-फिर यह कहते रहते हैं।।३।।

देखो-देखो आंख उठाकर पूर्व दिशा में,
क्यों हो गए निराश बताओ घोर निशा में।
वह देखो भगवान् भास्कर उदय हुए हैं,
अपनी तपती किरणें भू-पर डाल रहे हैं।
फिर हो गया विभोर, जगत् में चारों ओर,
यही सदा होता आया है होता यही रहेगा।।४।।
तुम जिसको मृत्यु कहते हो,
उसका नाम नया जीवन है।
तुम जिसको पतझड़ कहते हो,
वही वसन्त का शुभागमन है।
मुझे पूर्ण विश्वास और पूरी आशा है,
मेरी रत्ना बहिन इसी शाश्वत सत्ता के,
अटल नियम में चली गई हैं, देह बदलने।।५।।
छोड गईं वह देह जो थक कर चूर हुई थी,

जिसने कितने पीड़ा के क्षण सहन किए थे।
जिसने शशि को जन्म दिया, फिर जाते देखा।
जिसने अपने स्वजनों की लूटी देहों को,
अपनी भीगी आंखों से था विदा किया।
फूट-फूट कर था सबको कुरलाते देखा।।६।।
फिर भी हार न मानी, क्योंकि
वह विदुषी जागृत आत्मा थी।
पर मृत्यु तुमने घेर लिया, इस अमर ज्योति को,
जो अनगिनत बुझे दीपों को,
देकर के अपना प्रकाश,
बस चली गई है छोड़ यहां केवल ममता को।।७।।
वह ममता, समता, क्षमता,
जड़ नहीं नहीं हुई है।
इस सृष्टि को फिर देने प्रकाश,
बहिन रत्ना आएगी।
परन्तु कहां? किस देह में?
फिर किस स्नेह में?
यही बताना बहुत जटिल है।
हम सब भी तो राही हैं, बस उसी राह के।
कहीं तो मिलना होगा ही, क्योंकि एक मन्जिल है।।८।।

कैवल्यलीन आत्मा के प्रति विनम्र श्रद्धाञ्जलि

-डॉ० विष्णु देव शर्मा

संसृति की अजस्त्र धारा अनादि से अनन्त की ओर अबाध गति से चलती जा रही है।

सृष्टि की इस गत्यात्मकता को अपने बाहुपाशों में कौन बांध पाया है? कौन रोक पाया है इस सांतत्य प्रवाह को? संभवतः युगान्त द्रष्टा कवि कालिदास नें इसी पृष्ठभूमि में लिख दिया है, **''नीचैर्गच्छति उपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण''** समग्र चेतना चेतनात्मक जगत् के मानचित्र पर मानव के उत्पत्ति और विकास की सत्ता ही स्रष्टा की साधना के चरम निदर्शन हैं।

प्रकृति के भव्य उपादानों का लेखा-जोखा भी कहाँ है? मानव को उत्पन्न कर सृष्टि के नियामक ने पिता बनने का इतिहास रचा है। मानव की उत्पत्ति से प्रजापति की सतत साधना सार्थक हुई है, यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं है। यदि मानव के रूप में सृष्टि के सौन्दर्य की प्राण प्रतिष्ठा न होती तो अनन्त सत्ता के काव्य की बैखरी के निनाद भी कैसे गूंजते, कौन सुन पाता उसकी मादक सरगम?

अनन्त व्योम के वक्षस्थल पर दमदमाते नक्षत्रों का धरती पर बिखरना मानव जीवन के जन्म मरण का भान कराता है। सूर्योदय और अस्ताचल की ताम्रवर्णी आभा

भी मनुष्य की उत्पत्ति और अवसान के चरम सन्दर्श हैं। निःसंदेह गगन से टूट कर गिरने वाले नक्षत्रों में से अनेक बुझकर अपना अस्तित्व खो देते हैं, तो कुछ पूरी धरती के मुख को उजाले से भर देते हैं। उपवन में मुस्कराने वाले फूल भी अहर्निश मानव को संदेश देते रहते हैं। फूलों की मुस्कान से उपवन का सौन्दर्य निखरता है। कुछ तो जन्म लेकर गर्म हवाओं के झकोरों से बिखर जाते हैं, कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपनी मादक गन्ध से बियाबानों में भी सौरभ भर देते हैं। जिस प्रकार असंख्य मुस्कुराते फूलों से सराबोर उपवन हर एक राही को सौरभ से जीवन्त बना देता है, उसी प्रकार विभिन्न प्रकार के जीवन जीने वाले मनुष्यों से युक्त संस्था या समाज राष्ट्रीय परिवेश को प्राणवन्त बनाते हैं।

उपवन के विशाल प्रागंण में से यदि बारहमासी फूल हवा के झोंकों से गिरकर बिखरते हैं तो उपवन में उदासीनता नहीं आती, किन्तु यदि महकता फूल शाख से गिरकर बिखर जाए तो पूरे चमन का कलेवर, बेनूर उदास और वीरानी में भरा नज़र आने लगता है।

वानप्रस्थाश्रम के परिवेश से महकता फूल जब टूटा तो ऐसा प्रतीत हुआ कि समय कुछ लमहों के लिए ठहर सा गया है। प्रकाशवती रत्ना के निधन से आश्रम की रिक्तता ने उस महान नारी की गरिमा को जीवन्त कर दिया। विलक्षण प्रतिभा की धनी रत्ना जी की मौत के निशान अनेक वर्षों तक मिट नहीं सकेंगे।

प्रकाशवती रत्ना जी की वाणी में महक, चिन्तन के स्वर, स्वाध्याय की सरगम तथा जिज्ञासा के विविध आयाम किसी भी व्यक्ति के जीवन के पाथेय बन सकते हैं।

यज्ञशाला में प्रातःकालीन सवन सत्र में सभी साधकों के मध्य होने वाला उद्बोधन मृत्यु के पूर्व के दिव्य संदेश ही थे।

सेवा समर्पण को जीवन्त शक्ति भारतीय मनीषा की प्राण वन्त मूर्ति आज भी आश्रम के परिवेश में मंडराती सी प्रतीत होती है। यदि रत्ना जी की अंतिम यात्रा के अनेक पृष्ठ अधूरे अधखुले तथा अचीने हो तो क्या आश्चर्य। अश्रांत पथिक की बैखरी के अक्षर यदि किसी भी आकाश की गहराई में डूबे हो तो क्या आश्चर्य, पीयूष वर्षिणी वाणी का अवसान तो पंच भौतिक घटकों के बिखराव के साथ ही हो गया, किन्तु सान्ध्य जीवन की ताम्र वर्णी आभा के दर्शन इस आश्रम को शायद कभी न हों। प्रकाश रत्ना जैसी बहु आयामी व्यक्तित्व की जीवन्त आभा के लिए इस आश्रम को शायद बहुत समय तक प्रतीक्षा करनी होगी।

His ways are unscrutable

We are deeply grieved to learn the sad news of the death of your dear wife Prakashwati Ratna ji. God in all His mercies should have spared you and should not have snatched your life partner at this fag end of your life. But His ways are unscrutable and all of us have to bow before His wishes.

May God grant eternal peace to the soul of smt. Prakash

ati and give you sufficient strength to bear this tremendous loss ith patience. You needed her company most in the Ashram life here there were no near and dear ones. By her devotion and odly virtues she must have endeared the hearts of every shramite besides surely yourself. They must be feeling this terble loss. It is another shocking news in our lives. that our most ear and devoted friend has had to undergo this agony. The tragdy is that sitting here, we can't share your grief.

When we received your letter, the entire period of the time e spent together flashed before our eyes and Vidya & myself ecounted all those events step by step. Those were glorious ays. They have now become a thing of the past.

Yours in grief

R.K. Bountra and Vidya

श्रद्धामयी मां (वेदमयी माँ) तुम्हें प्रणाम

डा. महावीर
प्रोफेसर-संस्कृत एवं कुलसचिव
गुरुकुल कांगड़ी, वि.वि. हरिद्वार।

विश्वास नहीं होता कि स्नेह, ममता एवं वात्सल्य की प्रतिमूर्ति पूज्या मां काशवती रत्ना इस भौतिक संसार में नहीं रही, संसार में जिनके प्रति हमारी श्रद्धा वं आत्मीयता होती है, उनका अकस्मात् चले जाना बहुत कष्ट देता है, किन्तु विधि ा विधान उसकी व्यवस्था, जिसके समक्ष प्रत्येक वाणी विवश है, पराधीन है, चाहते ए भी बदल नहीं सकता। केवल सहन कर लेता है, तड़फ लेता है, आंसू बहाने के तिरिक्त और कोई उपाय भी तो नहीं है।

पूज्य मां प्रकाशवती जी को मैंने आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर की शोभा के प में देखा था। वे जिधर जातीं, जहां बैठतीं, जहां व्याख्यान देतीं, वहां प्रकाश खेरती चलती थीं। उनके मस्तिष्क में ज्ञान का प्रकाश था, हृदय में श्रद्धा का प्रवाह ा, मन में संकल्प रूपी अग्नि का उजाला था। बड़ी-बड़ी सभाओं में आर्य समाज उत्सवों में उनके व्याख्यानों को सुनकर श्रोताओं की मन:स्थिति का ऐसा परिष्कार ता था, ऐसा सात्विक, सुखद वातावरण बनता था, जिसे शब्दों में वर्णित नहीं किया ा सकता। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। प्रत्येक शब्द नाप-तोल कर लना, सुन्दर-सुन्दर शब्दों का चयन, मुक्तामणियों की माला के समान ललित ब्दावली उनकी भाषा की विशेषता थी। वे केवल व्याख्यान देने में ही रुचि नहीं वती थीं, अपितु अन्य विद्वानों के व्याख्यान श्रद्धापूर्वक सुनती थीं, सदैव डायरी कर बैठती थीं, नोट्स लेती रहती थीं। निरन्तर स्वाध्याय, सत्संग, मनन एवं चिन्तन मां रत्ना ने अपने ज्ञान कोश को बहुत विस्तृत बना लिया था।

वे बड़े-बड़े यज्ञों में ब्रह्मा के आसन को सुशोभित करती थीं। ब्रह्मा वेद का द्वान् होना चाहिए। नारी के लिए वेद में कहा गया है **''स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।''** ता जी ने इस वेद वचन को सार्थक कर दिखाया। उनका वेद-मन्त्रोचारण और यज्ञ

के मध्य वेदमन्त्रों की प्राञ्जल, भावपूर्ण सरस किन्तु सरल व्याख्या सुनकर श्रद्धा श्रोता आनन्द विभोर हो जाते थे। वे किसी भी विषय पर धारा प्रवाह भाषण करने समर्थ थीं। आर्य वानप्रस्थाश्रम उनके व्याख्यानों को सदा याद करता रहेगा।

वे केवल एक कुशल वक्ता और यज्ञों की ब्रह्मा ही नहीं अपितु आदर्श पत आदर्श माता, आदर्श गृहिणी थीं, सामाजिक कार्यों में सर्वात्मना समर्पित पूज्य आच विद्यारत्नजी की जीवन संगिनी बनकर उन्होंने सेवा धर्म को जीवन में पूर्णरूप अङ्गीकार कर लिया था। जैसे दिलीप और सुदक्षिणा दोनों ने मिलकर नन्दिनी की से की थीं, वैसे ही यह दम्पती सदा समाज रूपी नन्दिनी की सेवा में समर्पित रहा मनसा, वाचा, कर्मणा समाज की सेवा आचार्य जी के जीवन का महाव्रत है। पू रत्ना जी ने आचार्य जी की छाया बनकर इस व्रत के पालन में उनका सहयोग कि है। वे एक आदर्श माता थीं। अपने पुत्र और पुत्री का जिस प्रकार माता जी ने निर्मा किया, वह **'माता निर्माता भवति'** का आदर्श उदाहरण है। माता जी की पुत्री, हमा बहिन डा. नूतन पीड़ितों की सेवा करती हुई, अपनी मां की प्रतिमूर्ति जान पड़ती किन्तु हाय रे दैव दुर्विपाक तुमने आचार्य जी एवं पूज्या माता जी के आत्मरूप पु को असमय में ही अपनी चरण शरण में बुला लिया। कैसे सहा होगा इस वज्रपात क माता-पिता ने? केवल प्रभु भक्ति और मानवता की सेवा के सहारे ही धैर्य धारण क पाये होंगे। संसार में सबसे बड़ा धन सुपुत्र माना गया है। उस अनमोल धन के चुरा जाने पर भी गीता में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट स्थित प्रज्ञ की अवस्था को मैं इस आदर्श माता-पिता के व्यवहार में देखा। पूज्य आचार्य विद्यारत्न जी जीवन क किशोरावस्था से ही सामाजिक सेवा के कार्यों में अग्रणी रहे हैं। आर्यसमाज एवं भार विकास परिषद आदि संस्थाओं के माध्यम से आचार्य जी विद्यालयों, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में नैतिक जीवन मूल्यों का प्रचार-प्रसार करते रहे हैं। विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन तथा विद्यालयों में प्रार्थना सभाओं के अवस पर जीवनोपयोगी विचार देकर छात्रों के हृदयों में चरित्र, देशभक्ति एवं नैतिकता क संस्कार कूट-कूट कर भरना, आचार्य जी का दृढ़ संकल्प रहा है। इस यज्ञीय का में अपने स्वास्थ्य की तनिक भी चिन्ता न करते हुए पूज्या माता जी ने सदा आचा जी का साथ दिया है। निरन्तर स्वाध्याय और चिन्तन के द्वारा अपनी ज्ञान-पिपासा क शान्त करते रहना उनका सहज स्वभाव बन गया था।

मेरे सम्पूर्ण परिवार के प्रति वे अत्यन्त स्नेहमयी, ममतामयी थीं। मैं और मे पत्नी डा. वीना उन्हें हृदय से मां मानती थीं और वे भी हमें देखकर वात्सल्य परिपूर्ण हो जाया करती थीं। उन्हें मंच से मेरा बोलना बहुत प्रिय लगता था। जब बोलता, वे डायरी लेकर बैठ जातीं, लिखती रहतीं और कार्यक्रम की समाप्ति प मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगती थीं। महाकवि भर्त्तृहरि ने महापुरूषों का जो लक्ष बताया है, उनके जीवन में अक्षरशः सत्य प्रतीत होता था।
भर्त्तृहरि लिखते हैं-

> **मनसि वचसि कार्य पुण्य पीयूष पूर्णा,**
> **स्त्रिभुवनमुपकार श्रेणिभिः प्रीणयन्तः।**
> **परगुणचरमाणून् पर्वतो कृत्य नित्यं,**
> **निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥**

जो मन, वचन, कर्म से पुण्यरूपी अमृत से परिपूर्ण हैं, तीनों भुवनों को उपकारों से तृप्त करते हैं, दूसरों के गुणों के समान गुणों को सदा पर्वत के समान अपने हृदय में विकसित करते हैं, ऐसे सज्जन पुरुष संसार में कितने हैं? अर्थात् विरले ही हैं।

दूसरों के गुणों की प्रशंसा करना, पूज्य माता जी का स्वभाव बन गया था। मेरी सहधर्मिणी डा. वीना को देखकर उनका रोम-रोम पुलकित हो जाता, हृदय से लगाकर माता जी ने डॉ. वीना को जो आशीर्वाद दिये, उन्हें यादकर वे आज भी फूट पड़ती हैं।

मधुमेह आदि भयानक रोगों ने उनके भौतिक शरीर को भले ही क्षीण बना दिया था, किन्तु उनका आत्मबल अपराजेय था। आत्मशक्ति के द्वारा वे रोगों से लड़ती रहीं और वेद प्रचार और यज्ञों के विस्तार का महान कार्य करती रहीं। सर्वत्र ज्ञान का प्रकाश और यज्ञों की सुगन्ध फैलाने में उन्हें आत्मिक सुख मिलता था, अन्तिम समय तक उनका यह कार्य चलता रहा। आज वह श्रद्धामयी, ममतामयी, वेदमयी मां हमारे मध्य नहीं हैं, उनका स्थूल शरीर पंचतत्व में विलीन हो चुका है। किन्तु उनके व्यवहार, आचरण, श्रद्धा और वैदुष्य की सुगन्ध वातावरण में व्याप्त है। पूज्य आचार्य विद्यारत्नजी यदि विश्वास और दृढ़ संकल्प की प्रतिमूर्ति हैं तो माता जी श्रद्धारूपिणी थीं, श्रद्धा और विश्वास पर ही यह जगत् स्थिर है। एक के न होने पर दूसरे की दशा महाकवि भवभूति के शब्दों में-

जगज्जीर्णारण्यं भवति हि कल्त्रे ह्युपरते।
कुकूलनां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव॥

पत्नी के न रहने पर संसार जीर्ण अरण्यवत् हो जाता है और तदनन्तर हृदय धान की भूसी के समान जलता रहता है। यही स्थिति आचार्य जी की है।

इस स्मृति-अंक के माध्यम से पूज्य माता जी के गुणों को स्मरण करते हुए उस श्रद्धामयी मां को शत-शत नमन।

" कीर्ति यस्य स जीवति "

डॉ० वेद प्रकाश आर्य
कुलपति, द्रोण आर्ष कन्या गुरुकुल
३५-ए किशनपुर, देहरादून

गुलों की महक फैलती है
गुलिस्तानों तक।
मानव की महक फैलती है
आसमानों तक॥

ऐसी विभूतियां बहुत कम होती हैं- जिनकी महक मृत्यु उपरान्त कई गुना बढ़ जाती है-वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर की स्थायी ब्रह्मा, स्नेही बहन रत्ना जी उनमें से एक हैं-आर्य जगत् का कौन ऐसा व्यक्ति है जो उनसे परिचित न हो। आर्य जगत् की उत्कृष्ट विदुषि त्याग और तप की दिव्य ज्योति-चारों प्रहर स्वाध्याय, लेखनी, प्रवचन अथवा आतिथ्य में व्यस्त रहने वाली वह आदर्श मूर्ति भले आज हमारे बीच में नहीं हैं, उनकी अनेक कृतियां, जिज्ञासुओं को दिया गया अध्यापन, अनेकानेक प्रवचन, आकाशवाणी के सम्बोधन, वर्तमान की तरह सजीव हैं।

१९९८ में वे मानव कल्याण केन्द्र के वार्षिकोत्सव पर देहरादून आईं औ ब्रह्मा का दायित्व पूर्ण किया। इस केन्द्र से उन्हें बहुत लगाव था-मुझे राखी बांध भा की संज्ञा दी और सदा बहन का प्यार उड़ेलती रहीं।

बड़े परिश्रम से वेद और उपनिषदों के तैयार किए गए 100 के लगभग चा और उन्हें लैमीनेशन करने हेतु एक हजार की राशि मुझे यह कहते हुए दी कि इन सदा अपने आश्रम की शोभा बना कर रखना। आर्ष कन्या गुरुकुल के सभागार भव में यह चार्ट एक वैदिक निधि बन गए हैं।

ईश्वर अपने भक्तों की अनेक परीक्षाऐं लेता है- अनेक दु:ख और आघा में समान रहते हुए दु:ख को सहर्ष स्वीकारना, जीवन का एक बहुत ऊँचा छोर है

"ओ३म् खं ब्रह्म" की गूंज आज भी सुनाई दे रही है जो आचार्य विद्यारत जी और बहन रत्ना जी निरन्तर उच्चार रहे थे कब-जब उनके युवा बेटे की अर्थ देहली में अन्तिम यात्रा पर शमशान घाट की ओर बढ़ रही थीं-शान्त और समान थ इस घड़ी में भी मेरी बहन रत्ना-इस हृदय विदारक घटना को ईश्वर आदेश मान सहर्ष स्वीकारा इस आदर्श दम्पति ने।

इस घटना से पूर्व एक और तीव्र आघात बहन रत्ना को सहन करना पड़ा उनके बड़े भाई सहित परिवार के ५ सदस्यों की किसी जनजाति के लोंगों ने हत्या करके डकैती डाली। उस समय भी रत्ना जी ने अत्यन्त सहनशीलता का परिचय दिया था

बहन रत्ना जी सभी को माता जैसा, और बहन जैसा प्यार करती थीं, ऐसा आश्रम के सभी वानप्रस्थियों का कथन है।

वह एक महियसी, विदुषी, तेजस्विनी तथा स्नेहशीला महिला थीं-आर्यजगत के लिए विशेषत: वानप्रस्थ आश्रम के लिए एक ऐसी रिक्तिता दे गई है जिसकी पूर्ति कठिन है।

आर्या थी वह आर्या थी।
धर्म की अवतार थी-सत्य की मीनार थी
लालिमा वह भोर की-सिन्धु के छोर सी
धैर्य सी धन्यधान सी-ज्ञान के भंडार सी
धर्म का अवतार थी-सत्य की मीनार थी
तेज की किरणों से तेरे कितने दीप जले होंगे
सम्बोधन और प्रवचनों से-कितने सुमन खिले होंगे।
वेदों का प्रचार थी-गीता का वे सार थी
धर्म का अवतार...................आर्या थी वह आर्या थी।
मोक्ष मार्ग की बगिया मोड़ी-आवागमन की सीमा तोड़ी
सबला थी वह नारी थी-सब को इतनी प्यारी थी
भुलाए से न भूलेगी-सपनों में हरदम झूलेगी
मीत थी वह प्यार थी-देश का दुलार थी
आर्या थी....................वह आर्या थी।
धर्म का अवतार थी-सत्य की मीनार थी

कहां गई वे माँ ?

डा. वीना अग्रवाल
वेदालोक २२, नन्द विहार, हरिद्वार

आदरणीया माता प्रकाशवती रत्ना जी का स्मरण करते ही हृदय द्रवित हो जाता है। गला रुंध जाता है, न जाने उनके साथ विताये अनेक क्षणों को याद करके मन कहाँ जाता कि एक-एक बात मानस पटल पर अंकित सी हो जाती है।

माता जी के दर्शन मैंने सर्वप्रथम और अन्तिम बार वानप्रस्थ आश्रम की यज्ञशाला में किये थे। पहली बार जब मैंने उनका प्रवचन सुना था तो उनका एक-एक शब्द मेरे हृदय उतरता चला गया। घर आकर मैंने अपने पतिदेव से माता जी के विषय में पूछा। मैंने कहा-आज माता जी का प्रवचन बहुत ही अच्छा लगा, उनका भाषा पर पूर्णरूपेण अधिकार था। जब वह बोलती थीं तो ऐसा लगता था कि जैसे शब्दों की गंगा प्रवाहित हो रही है। उनकी भाषा में एक प्रवाह था, गति थी। माता जी का प्रवचन वानप्रस्थ आश्रम में हो या ज्वालापुर आर्यसमाज में मैं अवश्य सुनती थी। चाहे वह कितना लम्बा प्रवचन करें, समय का पता ही नहीं चलता था।

माता जी का सानिध्य बढ़ता ही गया, जब भी मिलती थी बड़े प्यार से, गद्-गद् होकर आशीर्वाद देती थी। वे भारत विकास परिषद के कार्यक्रमों में बड़े उत्साह से भाग लेती थीं। मुझे याद आता है जब शिशु मंदिर में भारत विकास परिषद का 'भारत जानो' कार्यक्रम था, जिसमें आचार्य जी तो प्रश्न पूछते थे, बच्चे उत्तर देते थे और माता जी बड़े उत्साह से उठ-उठ कर श्यामपट पर अंक लिखती थीं। मैं उनके उत्साह को देखकर मन ही मन बड़ी प्रसन्न हो रही थी कि माता जी में इस उम्र में भी बड़ा उत्साह है, ईश्वर उनको चिरायु करे। लेकिन क्या पता था कि जिस व्यक्ति से अधिक प्रेम करो वह बहुत जल्दी छिन जाता है। ऐसा स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि माता जी इतनी जल्दी हम सबको छोड़कर असमय ही चली जायेंगी।

आखिरी दिनों में वह मुरादाबाद नूतन दीदी के पास गई हुई थीं। वहां से वह कब वापिस आई हमें पता नहीं चला। एक दिन वानप्रस्थाश्रम में मेरे पति (डा. महावीर जी) का प्रवचन था, साथ में मैं भी गई हुई थी। कार्यक्रम की समाप्ति पर माता जी ने पीछे से आकर मुझे बड़े प्यार से पकड़ लिया। वह क्षण मुझे सदैव उनकी याद दिलाता रहेगा क्योंकि उसके अगले दिन ही वह अस्वस्थ हुई और अस्पताल चली गई। वहां से दिल्ली और वहाँ जाकर ही उन्होंने अंतिम सांस ली। तो मैंने श्रद्धामयी मां के दर्शन वानप्रस्थ की यज्ञशाला में ही प्रथम और अंतिम बार किये थे। यात्रा जहां से प्रारंभ हुई थी वहीं पर समाप्त हो गई।

माता जी के शरीरांत की सूचना जब मिली तो हृदय कांप गया, सुनकर विश्वास नहीं हो रहा था। लेकिन प्रभु की इच्छा को स्वीकार करना पड़ता है। हम दोनों सोचते थे कि अब आचार्य जी कैसे रहेंगे? मैं तो स्वयं में शक्ति नहीं जुटा पा रही थी कि आचार्य जी से मिलने कैसे जाऊं? वानप्रस्थ में जब माता जी की शोक सभा हुई थी, तब हम सभी यही कह रहे थे कि ईश्वर आचार्य जी को तथा उनके परिवार के सभी सदस्यों को धैर्य दें, शक्ति दें।

ममतामयी माँ के चले जाने से परिवार तथा समाज विशेषकर आर्य वानप्रस्थ आश्रम को जो क्षति हुई है, वह अपूरणीय है। उनकी आचार्य जी के साथ अपनी भी एक अलग पहचान थी। सोचती हूँ जिस माँ के समय-समय पर दर्शन होते रहते थे वह अचानक कहां शून्य में चली गई? हे माँ! आपको मेरा और मेरे परिवार का बारम्बार प्रणाम।

वैदिक संस्कृति की प्रतिमूर्ति
बहन श्रीमती प्रकाशवती रत्ना

यह संसार वस्तुत: सरणशील है, और अच्छी प्रकार इसका प्रसरण (गति) है, उस प्रसरण में कोई बाधा, काल, स्थान अथवा अन्य किसी भी प्रकार की समुपस्थि नहीं होती। अत: यह संसार है। इसी का नाम जगत् है, क्योंकि यह उत्पन्न होता है दृश्य में, जाता है, चलता है दृश्य रूप में और कुछ समय के लिए ठहरता है खड़े रहता है रूप में। यह दृश्य और अदृश्य के घेरे में प्रत्येक जीव को जकड़े हुए रहता है। इस जगत् को देखकर ही कवियों ने छोटे-छोटे काव्य-ग्रन्थों का प्रणयन किया। उनमें कुछ क ऐसे हुए जो दृश्य कहलाये और कुछ अदृश्य (श्रव्य) कहलाये। दृश्यों को हम दृष्टि से दे हैं। अत: वे दृश्य हैं, परमपिता के द्वारा रचित यह संसार रूपी विशाल काव्य भी दृश्य इसमें प्रत्येक जीवात्मा अपना-अपना अभिनय करता है और इस जगत् रूपी रङ्गमंच अभिनय करने के उपरान्त पर्दे के पीछे हो जाता है, पुन: कोई अन्य पात्र अपना अभि करने रङ्गमंच पर उपस्थित हो जाता है। कवियों के काव्य में जो अभिनय करता है और के पीछे चला जाता है उसे मरा हुआ नहीं कहा जाता, किन्तु परमात्मा रूपी कवि के संचालित इस संसार के महान् रङ्गमंच पर अभिनय कर पीछे चले जाने वाले पात्र को मृत घोषित करते हैं। वस्तुत: यह सच्चाई नहीं है। भला यह कैसे हो सकता है कि एक से कवि द्वारा रचित काव्य का अभिनय करने वाला तो जीवित रहता है और पर्दे के प चला जाता है, जिसका हम किञ्चिदपि दुख नहीं मनाते और उस विशाल क्रान्तदर्शी क परमात्मा द्वारा रचित इस संसार रूपी काव्य का अभिनय करने वाले पात्र के पर्दे के प चले जाने पर हम महान क्रन्दन करते हैं। यहाँ केवल दृष्टिभेद मात्र है। हम सब की य स्थिति होती है। दृश्यमान् जगत् के समस्त चर अचर अपना-अपना अभिनय मात्र कर हैं। उन अभिनयकर्ताओं को देखकर दर्शकों के अन्त:करण में सुख-दु:ख, हानि- ला जन्म-मृत्यु का भाव अंकित होता रहता है। ऐसे ही एक रङ्गमंच पर अभिनय करने वा बहिन का नाम था प्रकाशवती रत्ना। आचार्य श्री विद्यारत्न जी की धर्मपत्नी के रूप में जिन्ह अपना अभिनय प्रारम्भ किया था और उनके साथ कदम से कदम बढ़ाते हुए। **'सखे सप्तप भव'** की प्रतिज्ञा को निरन्तर स्मरण करती हुई वह दर्शकों के हृदय में नित्य चरैवैति चरैवै के गान को अङ्कित करती चली जा रही थीं। आर्यवानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर हो अथवा अ समाज ज्वालापुर, आर्य समाज आर्यनगर, आर्य समाज बी.एच.ई.एल., आर्य समाज हरि अथवा हरिद्वार के आस-पास गांवों में विद्यमान आर्य समाज हो, प्राथमिक विद्यालय, उच्च विद्यालय, महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय हरिद्वार के अन्तर्गत सर्वत्र इस युगल-दम्पती हम कभी भाषणों के माध्यम से कभी प्रवचनों के बहाने से कभी प्रभुभक्ति या देशभक्ति ग के प्रवाह से और कभी प्रश्न मञ्च के अभिनय से देखा करते थे। बहन प्रकाशवती रत्ना अप प्रकाश प्रकाशित करती हुई दर्शकों के हृदय में अपनी विद्वत्ता, अपना गाम्भीर्य, अपना आकर्ष व्यवहार और अपने भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम को प्रदर्शित करती हुई दिखाई देती थीं।

वस्तुत: बहिन प्रकाशवती रत्ना आयु में मेरे से बहुत बड़ी थी किन्तु उनके सात्त्वि और निश्छल व्यवहार को देखकर मैं ही नहीं अपितु बहुश: जन और वानप्रस्थाश्रम निवासीगण भी उन्हें बहिन ही कहते थे। आश्रम की व्यासपीठ से उनका भाषण मैंने बहुश सुना। उनके प्रत्येक भाषण की प्रत्येक पद पंक्ति उज्जवलतम होती हुई वैदिक संस्कृति अ

सभ्यता की प्रचारिका और प्रसारिका सिद्ध होती थी। प्रवचन करते समय प्रतीत होता था मानो मदालसा, लोपामुद्रा, कात्यायनी और गार्गी की परम्परावाहिका कोई देवी वर्तमान युग में अवतरित हो गयी हो। जहां तक मैं उन्हें समझ पाया उस बहिन में ज्ञान था, मिथ्याभिमान उन्हें स्पर्श नहीं कर सका था, विज्ञान से वह ओत-प्रोत थीं, अन्ध परम्परा उन्हें जकड़ नहीं सकी थी, विद्या के रूप में वह सरस्वती की प्रतिमा थीं, प्रकाशवती होने से लक्ष्मी का वाहन उन्हें ढूंढ न पाया था। वह विद्या के रत्नों की खान थीं, देव दयानन्द के ग्रन्थों की व्याख्यान थीं, सभ्यता, संस्कृति की वह जान थीं, अभिमान से वह विरान थीं, असत्य भूमि में सुनसान थीं, वस्तुतः बहिन प्रकाशवती रत्ना रत्नों में महान थीं। आश्रम व्यवस्था की वह पोषिका, विद्वज्जनों की तोषिका, वर्णो की वह कोषिका, प्रश्नों की थी कुञ्जिका, आश्रमवासियों की रञ्जिका, व्रतों की मधु-सञ्जिका, दुष्ट-दलों की भञ्जिका, ऐसी थी बहिन रत्ना रत्नां की पञ्जिका। कवि की उक्ति **"स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्"** किन्तु बहिन प्रकाशवती रत्ना के लिए वंश आर्य समाज था, जिसके लिए वह शरीर से अस्वस्थ होती हुई भी मन से स्वस्थता अनुभव करती हुई सर्वत्र वंश वृद्धि हेतु आया जाया करती थीं और उनका आचार्य श्री विद्यारत्न जी भी निरन्तर साथ निभाते थे। वैदिक व्रत में दीक्षित और शिक्षित यह युगल हम सब के लिए अनुकरणीय रहा। हरिद्वार के शिक्षित जनमानस में यह ऐसे छा गया जैसे ये उनके अभिन्न अंग हैं। आर्य समाज और शिक्षण संस्थाओं के मंचों को इन्होंने अभूतपूर्व रूप वैदिक प्रश्नों के माध्यम से प्रदान कर बाल वनिता और वृद्धजनों को हर्षित तथा आकर्षित किया। किन्तु वह बहिन अकस्मात् पटाक्षेप के द्वारा अन्तर्हित हो जायेंगी यह अब भी विश्वास नहीं हो रहा है। भारतीय सभ्यता, संस्कृति, दर्शन और धर्म की प्रतिमूर्ति प्रकाशस्वरूपा, विद्यारत्न विकाशिका, बहिन प्रकाशवती रत्ना के अभिनयोपरान्त जाने से आश्रम की एक विदुषी की कमी हो गयी। उस बहिन के प्रति मैं अपने हृदय से निकली इन पद पंक्तियों को उस महान आत्मा के लिए समर्पित करता हूँ-

प्रश्नमञ्चों के माध्यम से सबको जगा, दुःख दुरितों को प्यारे वतन से भगा,
रात-दिन तुम जगी थीं हितोपदेशिका, तुम तो थीं बेरों की सोम्य सन्देशिका,
प्रकाशों को तुमने भरा देश में, और विद्या के रत्नों को सन्देश में,
बहिन, तुम चली जाओगी एकदम, यह तो सोचा भी न था हमीं ने कदम,
ऋणी यह तुम्हारा जगत् आर्य है, ये आश्रम समाजें और विद्यालय हैं
श्रद्धा भरे अश्रु स्नेहित सुमन, तेरी यादों में बहिन हो ये अर्पण।।

डॉ0 सत्यदेव निगमालंकार,
प्रवक्ता, वेद, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार-२४९४०४, दूरभाष: ०१३३-४१५१९१

देवतात्मा प्रकाशमयी के नाम
मर्त्य लोक से भेजा गया एक पत्र

कहते हैं भाव गगन-विहारी होते हैं। उनकी पहुँच चाँद सितारों से भी ऊपर उस लोक में हो जाती है जो योगियों के लिये अगम्य है। तुम्हें मेरा स्नेहभरा यह भाव पत्र स्वीकार हो। तुमने श्रुतियों में पढ़ा व सुना होगा उपनिषद् का ऋषि वचन-**असतो मा सद गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय**-तुमने संभवतः ऋषि का वचन पूर्ण पा लिया है। यदि नहीं तो मेरी कामना है कि तुम अपनी अमरता की कहानी इस मर्त्य लोक में सुनाने के लिए धरा पर अवतीर्ण होओ।

हम ससीम हैं वह असीम है। हम गागर में छलकते बासी पानी हैं, वह नदि में बहता स्वच्छ पेय जल है। प्रकाश, तुम असीम में समा गई, शायद लौकिक सम्बन्ध की श्रृंखला तोड़ आनन्द लोक में जा पहुंची। यदि मेरी आवाज़ सुन सकती हो तो सुन तुम फिर धरा पर जन्म लो। वैतरणी में डूबते मानवों को व्यथा से उभारो। सज्जन की कोमल सुनहरी कल्पना को साकार करो।

तुमने इस धरा पर रहते हुये शैक्षिक जगत् में कितने ही शिष्यों को दीक्षा द होगी। शिष्य दूर दूर तक तुम्हारी गौरवमयी कीर्ति का प्रसार करें। तुम एक वात्सल्यमय मां रही होंगी जो पुत्र बिछोह में अपने सांस तोड़कर पति से दूर चली गई। पत्नी क अर्थ है जो यज्ञ में पति के साथ मन्त्रोच्चार सहित आहुति दे। पाणिनि ने सूत्र बनाय "पत्युर्यज्ञ संयोगे"। प्रकाश, तुम्हारा वानप्रस्थ जीवन सफल रहा। तुम वैदिक धरात पर रहकर यज्ञ देवता के चरणों में समर्पित रहीं। मैंने तुम्हारी आंखों से ढलते आसुअ में शान्त गंगा का निश्चल भाव देखा है। तुम्हारी वैखरी वाक में गंभीरता और निर्भीकत का मञ्जुल मिश्रण पाया। वेद के गहन अर्थो को तुमने कहानी के माध्यम से हृदयंगम कराया। मैंने एक दिन सम्भवत: २२ मई सन १९९९ को सुबह यज्ञोपरान्त तुम्हें वे मन्त्र का प्रवचन करते सुना था-तीन व्यक्तियों के माध्यम से तुमने वैदिक नीति क उपदेश सुनाया था। कई संस्मरण मेरे मानस पटल पर उतरे चले आ रहे हैं। मवाने म हम छोटे बच्चों को पढ़ाते थे। मैंने सरकारी सेवा छोड़दी पर तुम इस विभाग क शिक्षिका तथा अन्त में प्राचार्या के रूप में पालती रही। और आखिरकार पति के कन्धे से कन्धा जुडायें समाज सेवा में जुट गई। तुम्हें कई लोगों का प्यार मिला, योग्य पति का साथ मिला। मेरा विश्वास है कि वे तुम्हें आज भी अपने हृदय में देवी पद प प्रतिष्ठित किये हुये हैं। तुम धन्य हो।

तुम्हारा शेष परिवार कभी न टूटे। तुम्हारे जन्म जन्म के साथी श्री विद्यारत्न जी चिरायु हों और अपनी शुभावह उपस्थिति से परिवार, समाज, देश और विश्व को वेद के सत्य शिव और सुन्दर सन्देश सुनाते रहें। कर्म जीवन है, जीवन के साथ मृत्यु अवश्यंभावी है और मृत्यु के बाद पुनर्जीवन है, जन्म जन्मान्तर की श्रृंखला टूटती नहीं।

अन्त में मैं मंगल कामना करती हूं कि जब तक देश को अच्छाई की आवश्यकता हो तुम हमारे बीच आओ सुन्दरता के साथ जीओ-

तुम्हारी एक 'बहिन जी

रमा दुबलिश

Will of that Almighty

I received the sad news of the demise of smt. Prakashwati Ratna. The news was really shocking. I had known both of you for the last many years. I still remember the occasion when I went to Haridwar to deliver a lecture on Vikas Smarpit and smt. Ratna presided over the Havan performed on the occasion.

I can very well realize the loss you have suffered but are helpless before the will of that Almighty.

I pray to God to given peace to the departed soul and give you strength to bear this irreparable loss.

Suresh Chandra,
Prerna Apartments,Gandhi Nagar, Ghaziabad-201009

Sharing of grief

I am so sad to hear about the demise of your wife. May Almighty rant peace to the departed soul and give enough strength to you all to ear this irreparable loss. I can well understand your problems and share our grief.

P.L. Rahi
Senior Vice President, Bharat Vikash Parishad
New. Delhi

तेरे हितकर सहयोगी

तेरे हितकर सहयोग से, मेरा सुखी रहा यह लोक
मेरी ईश्वर से प्रार्थना है तेरा सुखी रहे परलोक।

चमन लाल राजपाल
४६, अरविन्द मार्ग, देहरादून।

ओ३म्

ब्रह्मवादिनी प्रकाशवती रत्ना जी

संस्कृत में विद्वान मनीषियों ने आपस में चिन्तन करते हुए संसार में धन्य प्राणी के विषय कहा कि यह संसार परिवर्तनशील है परन्तु इस संसार में ऐसा कौन सा तत्व है जो मनुष्य ो यश, सम्मान, आदर और श्रद्धा का पात्र बनाता है? क्योंकि **'परिवर्त्तिनी संसारे मतः को व न जायते'** है। परन्तु दूसरे स्थान पर इसका उत्तर देते हुये कहते हैं **स्रजग्तोयेन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।** अर्थात उसका जीवन यशस्वी होता है जिसमें क्रिया-कलाप द्वारा कुल ा नाम उज्जवल होता है। इस कसौटी पर यदि मान्या, परमश्रद्धेया, बहन रत्ना जी का आंका ाये तो उनके जीवन में यह बात पूरी उतरती है। गृहस्थी रहकर के जहां अपने गारस्थ्य कर्म ो निभाया, सन्तान का पालन पोषण किया एवम् अपने पति के साथ सामाजिक जीवन में न्धे से कन्धा मिलाकर पूर्ण सहयोग दिया वहां धार्मिक जीवन से भी अपने जीवन को सफल नाया। जो भी उनके सम्पर्क में आया उसने उनके जीवन की कार्यशैली, कार्यकलाप जीवन द्धति और सुलझे हुए विचारों की छवि देखी, सदैव प्रसन्न वदन रहना, मधुर भाषण, पर दुःख ातरता आदि गुण उनके जीवन को वन्द्य बना देता है जैसा कि कहा गया है कि ''वदनम् साद सदनम् हृदय सहृदयम् सुधामुचो वाचः करणम् परोपकरणम् येषाम् केषाम् न ते वन्द्या'' र्थात् जिसके दर्शनों से सदा प्रसन्नता, हृदय से दयालुता, वाणी से मधुरता तथा कार्य से रोपकार की भावना टपकती हो, ऐसे लोग वन्दनीय होते हैं। यह सारे गुण माननीया बहन ना जी के जीवन में पूर्णरूपेण चरितार्थ होते हैं। उनकी वह छवि मुझे सदा स्मरण रहती जब आश्रम की यज्ञवेदी पर ब्रह्मा के आसन पर विराजमान होकर यज्ञ का संचालन, वेदपाठ वं प्रवचन करती थीं तब यह चारों गुण साक्षात उनमें परिलक्षित होते थे।

असमय में वह सौभाग्यवती देवी अपने सौभाग्यवान पति, परिवार और समाज को छोड़कर ता नहीं क्यों चली गई, जबकि समाज को उनके जीवन की कार्यशैली से विशेष प्रेरणा की त्यन्त आवश्यकता थी। तो यही कहना पड़ता है:

हाय गुलची यह अजल से कैसी नादानी हुई,
फूल वह तोड़ा कि गुलशन भर में वीरानी हुई।

अतः मन मसोस करके उनकी सेवा में श्रद्धञ्जलि रूप में अपने भाव प्रकट करता हूं।

जैमिनी शास्त्री
आदर्श नगर, नई दिल्ली।

श्रद्धांजलियां
आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर से

श्रद्धांजलि

आश्रम का सौभाग्य था कि हमारे आर्य विरक्त आश्रम में एक विदुषी महिला जो कि आर्य परिवार में जन्मी, आर्य परिवार में आईं और उन्हीं वैदिक विचारों को लेकर आश्रम में अपने पति श्री विद्या रत्न जी के साथ उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग से निवृत्त होकर आईं। उनके व्यवहार और योग्यता से प्रभावित होकर तत्कालीन प्रधान ने उन्हें दैनिक तथा विशेष संस्कारों पर प्रवचन तथा वैदिक संस्कारों में प्रवीण जान कर प्रातःकालीन यज्ञ की ब्रह्मा के लिए नियुक्त किया। आश्रम में प्रतिदिन किसी न किसी वेद के मन्त्रों द्वारा आहुतियां दी जाती हैं, श्रीमती रत्ना ने उन मन्त्रों के भावार्थ के अतिरिक्त अपनी योग्यता का परिचय दिया, जिससे सभी आश्रमवासी उनकी योग्यता की प्रशंसा करते थे। आश्रम में उनके प्रवचन क्रमशः होते रहते थे, वेद मन्त्रों का गहन अध्ययन करके वह प्रवचन देती थीं और बड़ी नम्रता से आश्रम में निवास कर रही थीं। परन्तु देव को यह स्वीकार नहीं था कि वह हम से शीघ्र विदा हो गईं। उनके निधन से आश्रम ने एक रत्न खो दिया है, जिसकी पूर्ति असम्भव है। उनके निधन के एक वर्ष पश्चात् सबके हृदयों में उनके प्रति सच्चे हृदय से उनके अभाव में सभी आश्रमवासी दुःखी होकर उनकी वार्षिकी पर श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं।

मेरी तो प्रिय थीं किन्तु अपने गुणों के कारण वह सब की प्रिय बनीं। आश्रम के अतिरिक्त वह आश्रम के निकट बस्तियों में भी पूजी जाती थीं जिससे बाहर के लोग भी उन्हें आमंत्रित करते रहते। आश्रम से प्रचारार्थ जाया करती थीं, स्कूलों व कालेजों में जाकर बच्चों में वैदिक धर्म तथा देश भक्ति के प्रवचन देती रहतीं। आश्रम का पहला अवसर था कि रत्नाजी एक पहला व्यक्तित्व था जिन्होंने आकाशवाणी से घर-घर में वैदिक धर्म का डंका बजाया। उनकी स्मृति में दुःखी।

माता-पुष्पा
प्रधाना विरक्त वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर (हरिद्वार)

प्रकाशवती रत्ना

स्वस्ति पन्थाः (आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर)

१९-२-२००० को दोपहर १२ बजे देहली के मूलचन्द हॉस्पिटल में बहिन रत्ना जी का देहावसान हो गया। आर्य वानप्रस्थ आश्रम की कर्मठ विदुषी एवं आर्य सिद्धांतों की प्रबल समर्थक एवं अनथक प्रचारिका बहिन रत्ना जी के निधन से आश्रम को अभूतपूर्व क्षति पहुँची है। आश्रमवासियों को उनका अभाव सदा खलता रहेगा। लगभग दस वर्ष पहले आचार्य विद्यारत्न जी व बहिन रत्ना जी अपनी-अपनी राजकीय सेवाओं से सेवानिवृत्त होकर आश्रम निवास के लिए आए थे। तबसे दोनों ही निरन्तर आश्रम की सेवा में तत्पर रहे। बहिन रत्ना जी आने के कुछ महीने बाद से ब्रह्मा का पद सम्भाल रही थीं। इसके अतिरिक्त आपके

सारगर्भित, विद्वत्ता पूर्ण प्रवचन भी निरन्तर आश्रम में होते रहे। हरिद्वार में वेद प्रचार के लिए पारिवारिक यज्ञ, प्रश्न मंच एवं गोष्ठियों का आयोजन निरन्तर करती रहीं। आकाशवाणी से भी आपकी वैदिक विषयों पर परिचर्चाएं एवं वार्ताएं प्रसारित होती रहती थीं।

बहिन प्रकाश रत्ना जी का जन्म जिला मियांवाली के बक्खर शहर में १९२८ में हुआ। आपके पिता श्री मनीराम जी कालड़ा लाहौर में कार्यरत थे। अत: आपकी शिक्षा लाहौर में हुई। वहीं आपने प्रभाकर एवं प्राज्ञ परीक्षाएं पास कीं। सन् १९४७ में आपका विवाह हुआ और तुरन्त ही देश के बटवारे के बाद जन्मस्थान छोड़कर भारत आए। दोनों ही प्रारम्भ से शिक्षा विभाग से सम्बंधित रहे। बहिन प्रकाश रत्ना जी ने अध्यापन के साथ अपनी शिक्षा भी जारी रखी। अपने बच्चों एवं घर परिवार के प्रति पूरा कर्त्तव्य पालन करते हुए भी एम.ए. इतिहास में सर्वोच्च अंकों से पास हुई। आपने टूंडला राजकीय इन्टर कालेज के प्रधानाचार्य पद से अवकाश प्राप्त किया।

आपको बचपन में ही आर्य संस्कार मिले और सौभाग्य से जीवन-साथी भी पक्के आर्य समाजी थे। सो दोनों निरन्तर आर्य समाज, वेद और आर्य संस्कारों के प्रचार में ही लगे रहे।

आज हम आश्रम वासी उनके अभाव को गहराई से अनुभव कर रहे हैं, और सदा उनका स्मरण करते रहेंगे। प्रभु से उनकी श्रेष्ठ आत्मा की शान्ति के लिए और पारिवारिक जनों को धैर्य प्रदान हेतु परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

-सम्पादिका

श्रद्धाञ्जलि

वार्षिक वृतान्त

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ संन्यास आश्रम) ज्वालापुर, हरिद्वार

देहावसान दिनांक १९.०२.२०००

सौम्यता, विनम्रता, उदारता की मूर्ति बहन प्रकाश रत्ना जो सर्व गुणों का तीर्थ थीं और जिनकी जिह्वा पर सरस्वती वास करती थी, आश्रम के इतिहास में उनकी स्मृति सदा सर्वदा बनी रहेगी।

सभी आश्रम वासियों की ओर से उनको अश्रुपूरित नेत्रों से श्रद्धांजलि:

लगता है मात्र एक स्वप्न, कहां गया प्रकाश का रत्न।
खोजती दिशाएं-व्यथित हैं व्यथाएं, सूनी धरती-सूना आकाश।
कहां गई वह ओजमयी आवाज, निश्चय ही गईं स्वर्ग देने संदेश।
कि धरती पर भी है स्वर्ग जिसका वनस्थ वेश।

REMEMBERING PRAKASH

A lady of poise and wisdom, Prakashwati was the embodiment of the teaching of the Vedas that life is for living at all stages in the knowledge of attachment through detachment. We used to listen to her lectures on how to discreetly remain contented in this otherwise world of sorrows.

She carried a mystic personality of the 'sufis' who suffer a lot without suffering a bit or who are exalted a lot without exulting at all. For ten

years we were neighbours in the Arya Vanprasth Ashram, and it was long period to appraise each other. She was so caring and sharing th at moments of crisis she could be counted for real help.

O' Prakash ! Where are you now ? We can sense your presence the blooming roses, the soothing breeze, the singing birds, the floatir clouds and the eternal sky that you used to describe, the Brahm ! Tru to your class, Prakash, you must have joined the Stars or the Moon the Sun.

Pray, lead your kindly light because there is still lot of encirclin gloom on this earth!

SMT. KAMLA SETHI an
Swami Bal Ram Nirvrittanand
Former President, Arya Vanprasth Ashram, Jwalap

ओ३म्

कीर्ति यस्य स जीवति।

सौम्यता, शालीनता, कर्मठता, विद्वत्ता की प्रतिमूर्ति माता प्रकाशवती रत्ना। जिसक स्वभाव में विद्वान् साधु सन्तों के प्रति सेवाभाव, श्रद्धाभाव कूट-कूट कर भरा हो, उसे दूस से सेवा करवाना कहां स्वीकार होगा? अपनी इन्हीं भावनात्मक विशेषताओं को क्रियात्मक स्वरूप देते हुए हमारी स्नेहशीला माता समाज की सेवा करते-करते अचानक महाप्रयाण क गईं।

सौभाग्य से चन्द रोज़ पहले वह मेरी कुटिया पर मेरी अनुपस्थिति में पधारीं। सूचन मिलने पर, चूंकि मुझे प्रचार कार्य हेतु कहीं जाना था, उनसे भेंट किये बिना मन नहीं मान तो मैं अन्तिम भेंट ही थी, करने जा पहुँची और अन्तिम समय से पूर्व दिये गये उनके प्रवचन पर साधुवाद कहा। लेकिन माता जी तो थककर क्लान्त सी अपने बिस्तर पर निढाल पड़ थीं। फिर भी चिरपरिचित मुस्कराहट के साथ अपने साहस का परिचय देती हुई उठ खड़ हुई और स्नेहासिक्त-यह हमारी आखिरी मुलाकात थी।

मैंने अपने अल्पकालीन परिचय के अन्तराल में उनमें एक विशेषता देखी कि दूसर से कुछ सीखने में सदा तत्पर, कोई संकोच नहीं। स्वाध्यायरत माता कोई न कोई सैद्धान्तिक अथवा दार्शनिक प्रश्न यदा-कदा पूछ बैठती थीं और मुझे भी इस प्रकार की चर्चा से प्रसन्नता होती थी क्योंकि उनमें जिज्ञासा भाव था।

एक धर्मपरायणा, पतिव्रता, सुशिक्षित भारतीय नारी वैदिक संस्कारों से ओत-प्रोत। भाषा बहुत स्पष्ट और परिष्कृत।

कौन जानता था कि यह दीपक बुझने से पहले अपनी बढ़ी-चढ़ी लौ से दूसरों को प्रकाशित करने का पूर्ण प्रयास कर रहा है। कहने का अभिप्राय यह है कि उनके अन्तिम प्रवचन बड़े सारगर्भित और विवेकपूर्ण थे।

हम आश्रमवासी साधक-साधिकाओं को उन पर गर्व है। अन्त में हम जगनियन्ता-परमपिता परमात्मा से यही प्रार्थना करना चाहेंगे कि-

उजाले अपनी यादों को हमारे साथ आने दो।
न जाने ज़िन्दगी की किस गली में शाम आ जाये।।

ब्र0 इन्दु आर्या
१/३ वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर।

'वन्दना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो'

बहन प्रकाश रत्ना यज्ञीय जीवन की प्रतिमूर्ति

बहन प्रकाश रत्ना के स्वर्गवास का समाचार जानकर हार्दिक दु:ख हुआ तथा मैं और मेरी धर्मपत्नी दु:ख से स्तब्ध से होकर रह गए। विश्वास नहीं हो रहा कि वे अब हमारे बीच नहीं रहीं।

परम सौभाग्य का वह क्षण था जब प्रथम बार आर्यवानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में एक विलक्षण व्यक्तित्व के दर्शन किये थे। मुख मंडल पर अनोखा आध्यात्मिक तेज, वाणी में अमृत का प्रवाह था, मेरी उस बहन में। उन का नाम लेते ही कई स्मृतियाँ मानस-पट पर एक साथ उभर आती हैं जो उनको विविध चित्रों से विभूषित करती हैं। उन चित्रों में उनका सौम्य हंसमुख चेहरा, भावपूर्ण आंखे, मृदुभाषी रसीली मधुर वाणी, सात्विक और कर्मठ जीवन, निष्काम सेवा, मानवीय करुणा से ओतप्रोत, संवेदनशील हृदय, वेद मंत्रों का उद्घोष करने वाला ओजस्वी व्यक्तित्व, कहाँ से प्रारम्भ करूँ? समझ नहीं आता। क्या भूलूँ? क्या याद करूँ, पता नहीं चलता? वह मानवीय आकार में दिव्य गुणों की भण्डार थीं।

व्यास पीठ पर बैठ कर या आकाशवाणी के माध्यम से तथा अपनी लेखनी द्वारा वेदों की सुबोध व्याख्या करके उन्होंने अपने नाम को सार्थक किया। उनका व्यक्तित्व विद्वता और नम्रता का एक बेजोड़ सम्मिश्रण था। क्रोध और रोष उनके चेहरे पर कभी नहीं टपका। अहंकार दोष से तो कोसों दूर थीं। उनके जीवन का सर्वाधिक मोहक, आकर्षक, सराहनीय एवं महत्वपूर्ण पहलु उनका सहज, सौम्य, सन्तुलित, विनम्र व्यवहार था। उनके स्वभाव में प्रतिशोध, तीव्रता, आक्रोश का नामोनिशान भी न था। इसके लिये अवश्य ही उन्होंने अपने जीवन को साधना की भट्टी में झोंका होगा। उनका जीवन अपने आपमें एक यज्ञ था, जिसमें उनकी सम्पूर्ण मानवीय दुर्बलताएं आहुति बन चुकी थीं।

बहन जी का शुभ विवाह आचार्य विद्यारत्न जी से हुआ। आप देवता स्वरूप हैं। सादा जीवन एवं उच्च विचार की आप साक्षात् मूर्ति हैं। सोने पर सुहागा, विद्यारत्न जी कितने सौभाग्यशाली थे कि उनको ऊपर वर्णित सर्वगुण सम्पन्न प्रकाशवती रत्ना पत्नी के रूप में मिलीं। इस दम्पत्ति ने अपने जीवन पर्यन्त मन, वचन कर्म से स्वप्न में भी किसी को कष्ट देना या हानि पहुँचाना नहीं सीखा। इनके सानिध्य में बैठकर हर व्यक्ति शान्ति की अनुभूति करता था।

आर्यवानप्रस्थ आश्रम में बहन जी ने यज्ञ के ब्रह्मा की भूमिका को बड़ी योग्यता से निभाया और बड़े सुन्दर ढंग से पारायण यज्ञों में वेद मन्त्रों की व्याख्या करती थीं। साधक को और साधिकाओं को कैसा जीवन व्यतीत करना चाहिये, इसकी वह स्वयं एक उदाहरण थीं। उनकी करनी और कथनी में एकरूपता थी।

इस परिवर्तनशील, संसार में जो जन्मा है उसकी मृत्यु अवश्यमभावी है। 'यस्य छायाऽमृतं' जिस पर ईश्वर की कृपा होती है, जो ईश्वर की छाया में रहते हैं वह कभी नहीं मरते। बहन जी ने आश्रम व्यवस्था को उच्चतम शिखर पर पहुंचाने में जो योगदान दिया है और आश्रमवासियों को अपनी विद्वता से आकर्षित किया है, इसके फलस्वरूप आश्रम उन्हें कभी भी भूल नहीं सकता। उनके मार्ग दर्शन की कमी हमेशा अनुभव होती रहेगी। उनका आदर्श जीवन सदैव भविष्य के लिये अनुकरणीय रहेगा। हम सबके लिये वह सदा प्रेरणा स्रोत बनी रही हैं। वह मरकर भी अमर हैं।

आनन्द अभिलाषी

१/१ आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर

प्रकाशवती रत्ना की स्मृति में कुछ उद्‌गार दुखित हृदय से

इन्द्र देव खोसला, एडवोकेट
तथा राज खोसला

ईश्वरीय व्यवस्था तथा कर्मो का फल भोगने के लिए प्रत्येक प्राणी को इस संसार रूपी वाटिका में अपना अभिनय करने के लिए आना पड़ता है। कोई तो सुन्दर फूल खिलाकर चला जाता है, कुछ कांटे बोकर अपना जीवन धन्य समझता है। पर सुन्दर फूलों से ही सुगन्धि आती है, कांटो की तो पीड़ा बनी ही रहती है।

रत्नाजी अपने जीवन का सफ़ल अभिनय करके चली गईं। शिक्षा के क्षेत्र में एक योग्य शिक्षिका, प्रबन्ध कुशल, धार्मिक विचारों तथा एक विदुषी महिला थीं, आश्रम में थोड़े काल में ही अपनी छाप छोड़ गईं। लगातार आठ दिन एक ही विषय पर बोलते नहीं थकती थीं, विचारों का संग्रह उनका अनूठा था। आश्रम इस अभाव की पूर्ति नहीं कर सकेगा। वह आश्रम की स्तम्भ थीं। जैसा नाम वैसे गुण (रत्ना) रत्न ही थीं जो सुगन्धित फूल बखेर कर चली गईं। काश! कुछ काल और जीतीं रह जातीं परन्तु आश्रम के भाग्य में नहीं था-विधि के विधान के आगे झुकना ही पड़ता है।
शास्त्र वचन:

चलां चलं इदं सर्वम्, यस्य कीर्ति सः जीवति।

रत्ना जी के जीवन में यह उक्ति चरितार्थ है, और वह जीवित ही हैं।

प्रकाश किरण

एक खिली थी प्रकाश किरण, वह हमसे क्यों रूठ गई।
हम थे अज्ञानी पहचान न सके तुमको।।
तुम थीं एक अलभ्य ज्योति, जो आई और चली गई?
कहां पायें हम तुमको। ढूंड ढूंड हम हारे हैं।।
''शशी'' की ज्योति में भी देखा, पर दिखी न तुम हमको।
क्या अपराध हुआ है हमसे, समझ न सके हम उसको।
एक बार तुम ही बता दो, अज्ञान के अंधेरे में फंसे हैं।।
हम तो,
न जाने कब दूर होगा, यह अज्ञान का अंधेरा।
कब खिलेगी ''प्रकाश किरण''।।

माता सरस्वती
२/१८ आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर

ओ३म्

(ईश्वरीय सुख 'आनन्द' की विशेषताएं)

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा।
शन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥

सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में उद्धृत इस मन्त्र में 'शम्' शब्द पाँच प्रकार से प्रयुक्त है, इसका अर्थ क्रमशः इस प्रकार है-

१. सुखकारक २. सुखस्वरूप ३. सुखप्रचारक ४. सकल ऐश्वर्यदाता
५. विद्याप्रद

ईश्वरीय सुख (आनन्द) एवं लौकिक सुख (आनन्द) में निम्नलिखित अन्तर हैं:-

ईश्वरीय सुख (happiness)

१. ईश्वरीय सुख क्षणिक नहीं नित्य है।
२. यह विशुद्ध है चार प्रकार के दुःखों से रहित है
३. ईश्वर के सुख से व्यक्ति दुःख रहित होता है।
४. ईश्वर के सुख को प्राप्त करने के लिए भौतिक साधनों की अपेक्षा नहीं।
५. ईश्वर के नित्यानन्द को भोगने से तृष्णा की परिसमाप्ति होती है।
६. ईश्वर के सुख को भोगने वाला व्यक्ति पक्षपात, अन्यायाचरण को छोड़ न्यायकारी बन जाता है।
७. ईश्वर के सुख का भोक्ता स्वस्थ रहता है और उसके उत्तम परिणाम होते हैं।
८. ईश्वर का सुख भोगने से आयु दीर्घ हो जाती है।
९. ईश्वर का सुख भोगने से मनुष्य मन और इन्द्रियों का स्वामी बन जाता है।
१०. ईश्वर का आनन्द भोगने वाला व्यक्ति निष्कामकर्त्ता बनता है।
११. इसका भोक्ता सम्पूर्ण तन, मन, धन से दूसरों का उपकार करता है और स्वयं विविध कष्ट सहकर भी अन्यों को सुख देने का प्रयास करता है।
१२. ईश्वर के नित्य सुख को भोगने वाला सत्यमानी, सत्यवादी और सत्यकारी बन जाता है।

लौकिक सुख (pleasure)

१. लौकिक सुख क्षणिक है, अनित्य है
२. यह अशुद्ध है, चार प्रकार के दुःखों से मिश्रित है।
३. इसके स्थिर न रहने से व्यक्ति को अत्यन्त दुःख होता है।
४. इसकी सिद्धि के लिए बहुत धन सम्पत्ति व विविध प्रकार के साधनों की अपेक्षा होती है।
५. लौकिक सुख के भोगने से मनुष्य की तृष्णा बढ़ती है।
६. लौकिक सुख को भोगने वाला व्यक्ति अन्यायपूर्वक अपने सुख और सुख साधनों की सिद्धि करता है।
७. सांसारिक सुख का भोक्ता रोगी हो जाता है और उससे दुष्परिणाम होते हैं।
८. सांसारिक सुख भोगने से मनुष्य की आयु अल्प हो जाती है।
९. सांसारिक सुख भोगने से मनुष्य मन और इन्द्रियों का दास बन जाता है।
१०. लौकिक आनन्द भोगने वाला मनुष्य स्वार्थी बन जाता है।
११. इसका भोक्ता अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए दूसरों की धन- सम्पत्ति को अन्यायपूर्वक छीन लेता है एवं अन्यों को दुःख देकर सुखी होने का प्रयास करता है।
१२. लौकिक अनित्य सुख को भोगने वाला व्यक्ति असत्यमानी, असत्य- वादी और असत्यकारी बन जाता है।

१३.ईश्वर के आनन्द को भोगने वाला वैरभाव को छोड़कर परस्पर प्रेमपूर्वक रहता है और समस्त संसार में संगठन की स्थापना करना चाहता है।	१३. सांसारिक सुख को भोगने वाला व्यक्ति प्रेमभाव को छोड़कर परस्पर झगड़े उत्प कर विघटन की स्थापना करता है।
१४.शुभ कर्म-यज्ञ, दान, अध्ययन अध्यापन, देशसेवा, बड़ी-2 सुधार योजनाएं इन सब विशुद्ध रूप से किये गये शुभ कर्मों का कारण ईश्वरीय सुख है।	१४.अशुभकर्म-चोरी, डाके, मिलावट, बलात्कार, झगड़े, परस्पर विरोध, बड़े युद्ध, समस्त कुरीतियाँ आदि इन स अशुभ कर्मों का कारण सांसारिक सु है।
१५.यह सर्वत्र प्राप्य है।	१५. यह सर्वत्र प्राप्य नहीं है।
१६.इसे चुराया नहीं जा सकता, छीना नहीं जा सकता।	१६. इसे अन्य चुरा सकते हैं, छीन सकते वंचित कर सकते हैं।
१७.इससे स्वयं सुखी होकर औरों को भी आनन्दित करता है।	१७. इससे अन्तत: स्वयं दु:खी होकर-अन्य को भी दु:खी करता है।
१८.यह कुसंस्कारों का नाशक होता है। सुसंस्कारों का उत्पादक होता है।	१८. यह कुसंस्कारों का उत्पादक होता एवं सुसंस्कारों का नाशक होता है।
१९.इससे व्यक्ति स्वस्थ, शान्त, प्रसन्न और सन्तुष्ट रहता है।	१९. इससे व्यक्ति रोगी, अशांत, अप्रसन्न असन्तुष्ट रहता है।
२०.ईश्वरीय सुख से व्यक्ति ऊबता नहीं है। उसमें परिवर्तन नहीं चाहता।	२०. लौकिक सुख से व्यक्ति कुछ का पश्चात् ऊब जाता है। उसमें परिवर्त चाहता है।
२१.इसको भोगने वाला कालान्तर में मुक्ति को प्राप्त करता है, जिसकी अवधि 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्ष है।	२१. इसको भोगने वाला कालान्तर में पुन पुन: जन्म-मरण के बन्धन में आता है
२२.ईश्वर के नित्यानन्द को लक्ष्य मानकर चलना मनुष्य का कर्तव्य है, इससे व्यक्ति ज्ञानी, न्यायकारी, निष्कामकर्मी और क्लेशरहित बनता है।	२२. सांसारिक सुख को अन्तिम लक्ष्य मानकर चलने वाला अज्ञान, अन्याय, और क्लेश से बच नहीं सकता।

सुख के कारण (उपाय)

विवेक, धर्माचरण, न्यायाचरण, शुद्धोपासना या सुसंस्कार-शुद्ध संस्कार अपने आत्मा के तुल्य दूसरों के सुख-दु:ख, हानि लाभ को समझना।

ईश्वर को उपादेय मानकर चलना।

संसार को हेय मानकर चलना।।

दु:ख के कारण (उपाय)

अविवेक, असत्याचरण अधर्माचरण, अशुद्ध उपासना, कुसंस्कार अशुद्ध संस्कार मिथ्यावासना, पुत्रेषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा।

ईश्वर को हेय और संसार को उपादेय मानकर चलना।

ब्र0 इन्दु आर्या
१/३, वानप्रस्थश्रम, ज्वालापुर

माता जी-नाम से भी

परमादरणीय श्रीमती प्रकाशवती रत्ना जी से मेरा प्रथम सम्पर्क 1994 में मा था, जब मैं अपनी पत्नी के साथ इस आश्रम में प्रथम बार आया था और दूसरे मेरी दीक्षा के अवसर पर उन्होंने ब्रह्मा का दायित्व निभाया था। उस समय के ान स्वामी बलराम निर्वृत्तानन्द जी ने उन्हें विशेष रूप से मेरी दीक्षा की ब्रह्मा बनने आमंत्रित किया था क्योंकि प्रधान जी का मत था कि ब्रह्मा के दायित्व को निभाने वे सर्वोत्तम विद्वान व दक्ष महिला थीं। तब से ही मेरे हृदय पटल पर उनके सम्मान विद्वता की अमिट छाप अंकित हो गई थी।

तद्पश्चात समय-समय पर मुझे उनके प्रवचन सुनने का सौभाग्य मिला। समें कोई लेशमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं होगी, यदि मैं यह कहने की धृष्टता करूँ वे सर्वोत्तम प्रवक्ता थीं। उनके प्रवचनों में वेदों का ज्ञान व मन्त्र, व्यवहारिक झाव व उपदेश, हिन्दी व अंग्रेज़ी साहित्य के उद्धरण बड़े सरल व समुचित रूप से ुर मात्रा में होते थे। मुझे ऐसे अनेकों अवसरों का स्मरण है जब प्रवचन किसी अन्य क्ता का था परन्तु वह किसी कारण से नहीं आ सके थे। तब बहुधा प्रत्येक ऐसे वसर पर श्रीमती रत्ना जी को तुरन्त ही, मंच पर बुला लिया जाता था तथा वे बड़े विश्वास व पांडित्य से उपदेशात्मक, मनोरंजक व सफलतापूर्वक उस दायित्व को भाती थीं। मैंने ऐसे अवसरों पर अनुभव किया है कि उनका बिना पूर्व तैयारी के या गया प्रवचन पहले से निश्चित प्रवचनों की अपेक्षा कहीं अधिक विद्वतापूर्ण, नोरंजक व लाभदायक होता था। यह थी एक अत्यन्त उल्लेखनीय व स्वभाविक तिभा उनमें।

मैं उनको माता जी कहता था तथा माता के रूप में ही उनसे व्यवहार करता । इसका विशेष कारण था कि मेरी अपनी मातृश्री का नाम भी प्रकाशवती ही था। नके देहावसान की सूचना मिलने पर मुझे ऐसा लगा जैसे मैंने अपनी मातृश्री को सरी बार खो दिया है। परन्तु वे मुझे चरणस्पर्श करने का सौभाग्य नहीं देती थीं योंकि उनके विचार में मैं आयु में उनसे बड़ा था। ऐसी थी उनकी व्यवहारिक हानता व सरलता। उनमें दूसरों से कुछ पानें की लेशमात्र भी लालसा नहीं थी अपितु सरों को कुछ देने हेतु ही वे तत्पर रहती थीं। मैंने उनकी कुटिया पर उनके बने ादिष्ट पराँठे खाये हैं, जो उन्होंने पूर्ण अतिथि सत्कार व प्रेम से बनाये थे।

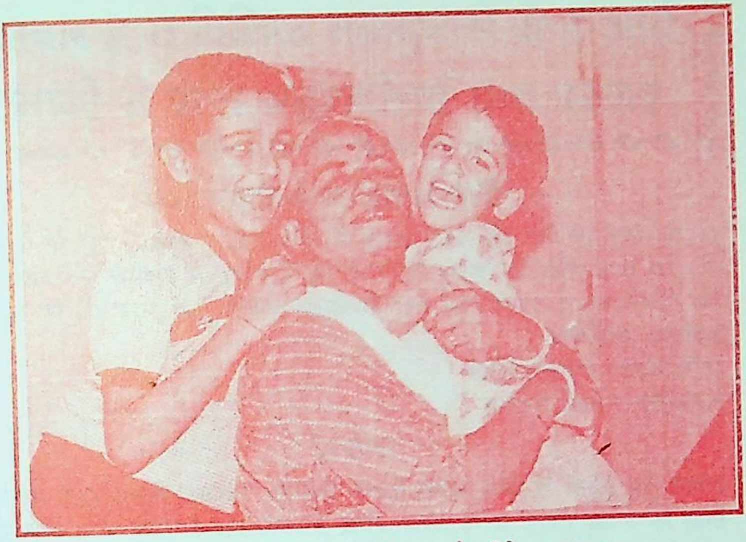
ऐसी महान, विदुषी, कार्यकुशल व सर्वगुण सम्पन्न महिला के आकस्मिक वसान से आश्रम व समस्त मानवजाति की महान हानि हुई है। कौन जाने वे किस प में किस अन्य लोक में जीवन निर्वाह व कर्त्तव्य पालन करने जा रही होगीं। चीन महानतम व अति प्राचीन सन्त कन्फ्यूशियस ने कहा था कि सहृदयता एक ऐसा ण है जिस पर व्यक्ति को आजीवन आचरण करना चाहिये। आदरणीया रत्ना जी में ह गुण कूट-कूट कर भरा था। मैं उनकी पावन स्मृति में नतमस्तक हूँ।

राजेन्द्र बन्सल
२/५१ आर्य वनप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर

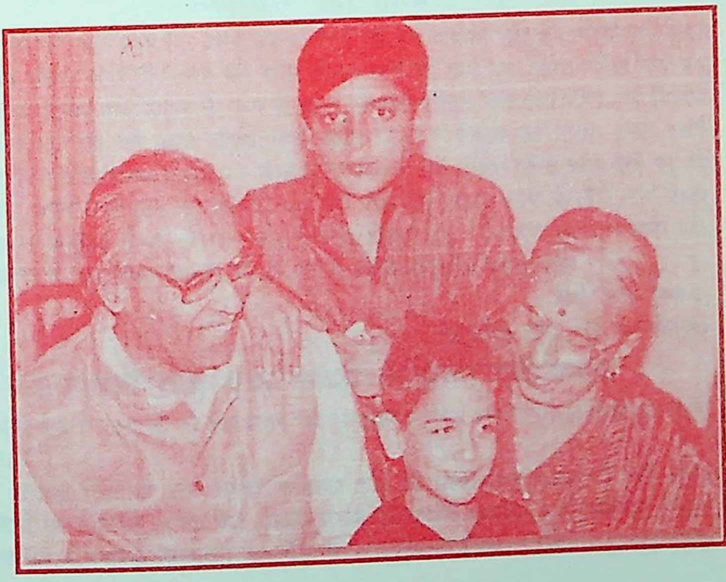
गायत्री अक्षराञ्जलि

ओ- हाय १९ फरवरी दुखदाई कितनी हमको हुई।
उ- स प्रातः बेला ने पूज्यनीय को विरह यातना दई।
म्- न रो रहा है। स्वार्थ हित मिटा स्नेह कहां पायेगा?
भूः- ल है उसकी बड़ी वह लौटके नहीं आयेंगी।
र- ास्ता बताए कोई हमको हम भी उस मार्ग के पथिक बनें।
भु- ली जहां प्रिय आप जाकर सानिध्य हम किसका गहें?
वः- ह विद्वता भरा प्रवचन क्या कभी सुन पायेंगे?
स्वः- र्ग वासी हो गईं धैर्य कहां धर पायेंगे?
तत्- काल पुनः आ जाये ऐसा साधन धरा पर है यदि।
सवि- कार विनय प्रभु करो तत्क्षण भेजें अभी।
तु- ष्ट नहीं होते थे कर्ण घड़ी रुक जाये यह सोचते।
र- सना से प्रस्फुटित वाणी उमंगित हृदय मुसकाते थे जब देखते।
व- सुन्धरा सी शास्त्र स्मृति, ग्रन्थों से चुनकर मोती देती थी हमें।
रे- कोई समझाओ उनको रुष्ट होकर बिसारा क्यों हमें?
ण- किशंकरणी सम हो गये अश्रुकण हैं बह रहे।
य- ह प्रभु लीला रची हतप्रभ सारे रह गये।
म्- न में उठती है वेदना बच्चों व भ्राता जी का कष्ट देखकर।
भर्गो- भासती थीं सोम्या थीं तुम साध्वी।
देव- लोक में निश्चित गईं, उन्नत थी आत्मा आपकी।
स्य- ाम नमनवत किन्तु मिल न पायेंगे अब कभी।
धी- प्रभु प्रदत्त थी आपकी, मंत्रों की उलझन खोलतीं।
म- न में प्रबल है वेदना संसर्ग पाकर कुछ भी न मैं बनी।
ही नता की भावना मन मेरा उद्वेलित कर रही।
धि- क्कार तो मैं स्वयं को असहाय सी अविकल खड़ी।
यो- तो परहित की भावना, हृदय उच्च था विशाल था।
यो- ही न व्यर्थ जायेगा प्रयुक्त सुसात्विकता थी महान।
नः- हीं सोचा था यह समय भी हम सब को झेलना।
प्र- काश रत्न विभूषित स्मृति विचारों से खेलना।
चो- ट यद्यपि है प्रबल सांसारिकता से प्रभावित परिजन सभी।
द- यालु कृपा यदि आपके सहयोगी हम सभी।
या- म आठों वेद गंगा में अवगाहन करती रहीं।
त्- न मन समर्पित सात्विकी भावना भरती रहीं।
ओ- स के कण बिन्दु तुल्य हैं क्षण भंगुर शरीर।
म्- न यही सोच कर रहता नहीं क्यों धीर?
शान्ति- दो आत्मा को सद्गति परमानन्द भी।
इ- स जन्म में क्षति की पूर्णता दुष्कर है महा।
ति- नके के समरूप मैं भी तरूं भवसागर महा।

शोक सन्तप्त-शकुन्तला नरूल
वानप्रस्थाश्र



प्यारे बच्चों के बीच दादी का नैसर्गिक आनन्द



पोतों के साथ आनन्दमय क्षण

पत्राचार द्वारा विशिष्ट महानुभावों से व आर्य समाजों से प्राप्त श्रद्धांजलियां तथा प्रस्ताव

प्रकाशवती-एक आदर्श नारी

हमको यह जानकर बहुत दुःख हुआ है कि श्रीमती प्रकाशवती रत्ला का निधन हो गया है। हमारी परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वे उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें और सारे परिवार को धैर्य प्रदान करें। श्रीमती प्रकाशवती रत्ला धैर्य पारायण व आदर्शवादी थीं।

लखीराम कटारिया
महर्षि दयानन्द स्मारक केन्द्र,
बनचारी विस्तार, फरीदाबाद

प्रार्थना

आचार्य विद्या रत्लजी, आपकी धर्मपत्नी श्रीमती प्रकाश रत्ला के निधन पर अत्यन्त दुःख और शोक प्रकट करता है और ईश्वर से प्रार्थना करता है कि उनकी आत्मा को शांति प्रदान करे और आपकी और आपके परिवार को सहन शक्ति दे।

लखीराज
संरक्षक, आर्य समाज साकेत (नई दिल्ली)

विश्वास नहीं होता

विश्वास ही नहीं होता कि बहन प्रकाश रत्ला जी हम सबको छोड़कर चली गईं। बहन रत्ला जी का जीवन बड़ा ही सुन्दर था। सारा जीवन कर्म के मार्ग पर, शिक्षा-दीक्षा एवं प्रभु भक्ति में लगा दिया। एक उद्यान के रूप में आर्य पब्लिक स्कूल मालवीय नगर, नई दिल्ली के मुख्याध्यापिका पद को ग्रहण करके भली भांति स्कूल में शिक्षा का प्रचार-प्रसार करते हुये, ज्वालापुर वानप्रस्थाश्रम (हरिद्वार) जाकर वानप्रस्थनी की दीक्षा-ग्रहण की। वहां पर भी जीवन प्रेरक प्रवचनों से ज्ञान का विस्तार कर रही थीं। इस प्रकार कार्य में लगी रहीं परन्तु प्रभु के विधान अनुसार निधन हो गया और दिवंगत आत्मा प्रभु की चरण शरण में समा गईं। प्रभु से प्रार्थना है कि मुक्त आत्मा को वे शान्ति एवम् सद्गति प्रदान करें।

स्त्री आर्य समाज,
मालवीय नगर, नई दिल्ली-१७

प्रकाशवती रत्ला-एक अच्छी लेखिका एवं वक्ता

श्रीमती प्रकाश रत्ला जी के देहावसान का समाचार सुनकर समाज के सदस्यों को गहरा दुःख हुआ।

स्व. प्रकाश रत्ला जी एक अच्छी लेखिका होने के साथ-साथ वक्ता भी थीं। आल इंडिया रेडियो पर आपकी अनेक बार वार्ताएं एवम् परिचर्चायें प्रसारित हुईं। पश्चिम विहार आर्य समाज को भी आपके मार्गदर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपका स्वभाव बड़ा मृदृ एवम् सरल था।

वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर (हरिद्वार) में कई वर्षों से आप ब्रह्मा पद पर सुशोभित रहीं। ऐसे यज्ञ निष्ठ व्यक्तित्व के देहान्त से आश्रम को नहीं सम्पूर्ण आर्य जगत् को भारी क्षति हुई है।

आर्य समाज, पश्चिम विहार के समस्त सदस्यगण दिवंगत आत्मा की सदगति एव शांति की कामना करते हैं और परिवार जनों को इस महान दु:ख सहने की शक्ति के लि भी प्रार्थना करते हैं।

बी.एन. चौधरी, प्रधा
आर्य समाज, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-

जगत् से एक विदुषी छिन गईं

श्रीमती प्रकाशवती रत्ना जब भी मुरादाबाद आती थीं उच्च शिखर के प्रवचनों से अ समाज हरथला रेलवे कालोनी को सराबोर करती थीं। उनकी वाणी में माधुर्य था, वाणी तेज, ऋताचार का कथन होता था। आर्य वानप्रस्थाश्रम हरिद्वार को जहां उनके निधन पर क्ष हुई वहां आर्य जगत् से एक विदुषी छिन गईं। आर्य समाज के इस रविवासरीय अधिवेशन सभी- संदस्यों ने अत्यन्त दु:ख व्यक्त किया और दिवंगत आत्मा की शांति और आचा विद्यारत्न जी को सहनशक्ति प्रदान करने की प्रार्थना की गई।

आर्य समाज
रेलवे कालोनी, हरथला, मुरादाबा

संस्था सदस्या प्रकाशवती रत्ना

भारत विकास परिषद, भेल-ज्वालापुर (हरिद्वार) को यह दु:खद् समाचार जानकर वि भारत विकास परिषद, भेल-ज्वालापुर की संस्थापक सदस्या श्रीमती प्रकाश रत्ना जी क स्वर्गवास हो गया है, हार्दिक दु:ख पहुंचा। श्री देवराज जी की अध्यक्षता में नव निर्वाचि कार्यकारिणी एवं सदस्यों की बैठक में श्रीमती प्रकाश रत्ना के निधन पर सदस्यों द्वारा न हृदय से शोक व्यक्त किया गया तथा ईश्वर से दिवंगत आत्मा की शांति हेतु प्रार्थना की गयी

राजकुमार चौहान, सचि
भारत विकास परिषद भेल ज्वालापुर, (हरिद्वार

वैदिक विदुषी-प्रकाशवती रत्ना

वैदिक विदुषी श्रीमती प्रकाशवती रत्ना, धर्मपत्नी, आचार्य विद्यारत्न २/३५, आ वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर के असामयिक एवं आकस्मिक देहावसान पर उपर्युक्त शाखा हरिद्वा की मासिक सभा में दो मिनट का मौन धारण कर उनकी आत्मा की शांति के लिये प्रार्थन की गई। ईश्वर उनके विवेकी पति व परिवार के अन्य सदस्यों की इस असीम/अपार दु:ख व वियोग को सहने के लिये धैर्य, साहस व आत्मबल प्रदान करें, प्रभु की ऐसी ही इच्छ थी।

यः एन वेत्ति हन्तारम् यश्चेनम् मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतः नायम् हन्ति न हन्यते॥

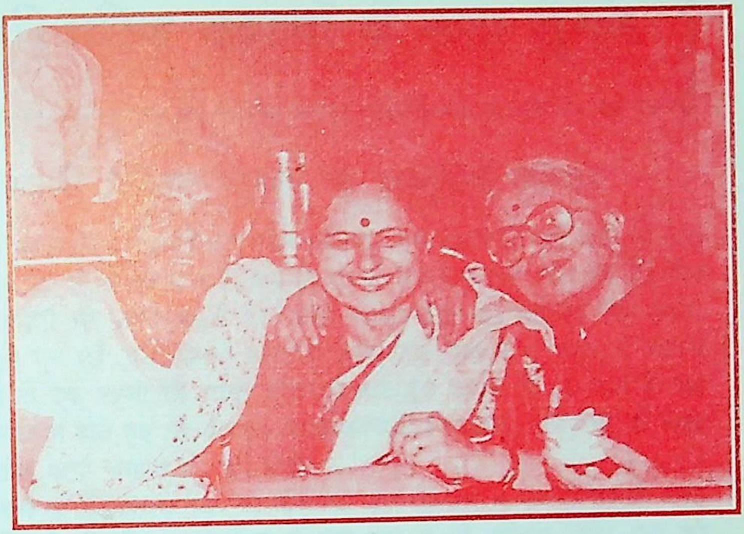
मंत्री-रोहन सिंह

सतीश चन्द्र गुप्त
कृते अध्यक्ष
गवर्नमेंट पेन्शनर्स वेलफ़ेयर आर्गेनाइजेशन, उ.प्र., हरिद्वार।

कैसे भूल सकते हैं?

श्रीमती द्रौपदी एवं श्री जयदेव राजपाल
श्री दयानन्द कालोनी, ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली

उनका असीम प्यार जो हमें मिला था, हम उनको कैसे भूल सकते है? वह तो एक महान आत्मा थीं, भगवान उनको शांति दें और आपको सहनशक्ति।



मुस्कानों भरे क्षण बेटी और बहन के साथ



ननदों, देवरानी एवम् अपने दोनों प्रिय बच्चों के साथ

पारिवारिक सदस्यों के श्रद्धा सुमन

भाभी प्रतिभा कुमार के अश्रुपूर्ण उदगार

दीदी का अन्तिम पत्र बार बार पढ़ा। बहुत देर तक समझ ही नहीं पायी, मैं कहां क्या कर रही हूँ, ये सब क्या है, क्यों हो रहा है, हम यहां क्यों जन्म लेते हैं? फिर ने की तैयारी भी करनी पड़ती है। 'माली आवत देख कर कलियां करें पुकार, ली-फूली चुन लई, कल हमारी बार।' न जन्म हमारे हाथ है न मरण, न आरम्भ अन्त है तो एक लम्बी सी यात्रा। जीवन में कई ऐसे पड़ाव भी आ जाते है जहां कना सम्भव न होते हुए भी रुककर अपने आपको सम्भालना आवश्यक हो जाता यह खोज कभी समाप्त ही नहीं होती।

साहित्य के रचनात्मक स्तर पर दीदी का ज्ञान भण्डार व उसकी प्रस्तुति अति च्च कोटि की थी। मैं तो उस समुद्र में बून्द मात्र से भी अधिक अपने आप को हीं ठहरा पाती, हां! भावनात्मक स्तर पर हमने एक दूसरे को खूब समझा है। उनके ाचार को संजो कर बहुत सीखने की चेष्ठा करती रहती हूँ।

अगर बत्ती धुआं देकर ही अपनी सुगन्ध फैला पाती हैं, दीपक जल कर ही तो गेति प्रदान कर पाता है, जलना दीपशिखा की नियति है, सुख में दुःख का चुनते ना, दुःख में सुख की छवि दूंढना मानव जीवन की नियति है। दुःख सुख का टवारा करने वाला जगत् नियंता चुपचाप अपना कार्य करता है, समझना हम अल्प द्धि मनुष्यों पर छोड़ देता है, कठपुतली बने हम क्या कुछ नहीं सोच जाते?

सहनशीलता, कर्त्तव्य निष्ठा, उदारता, मधुभाषा, व्यवहार कुशलता, व शुद्धज्ञान ओत प्रोत दीदी का व्यक्तित्व सदा चमकता रहता था। नारी सुलभ कोमलता, स्नेह वात्सल्य पूर्ण उनका व्यवहार उन्हें छोटे बड़े सबका प्रिय बनाये रखता था। पति ो पूर्णतया समर्पित। उनकी जीवन शैली व उनके विचारानुकूल उनका आचरण होते ये क्या अब उनकी आत्मा को यह सहन हो पायेगा कि उनका देवता अपने आपको हीं भी हेय समझता रहे? वह अपने पति को यत्न से सम्भालती थीं। उस देवी की व्यता को अक्षुण रखने का दायित्व उनके पति पर है। भारतीय नारी की आन्तरिक च्छा के अनुसार वे अपने पति के हाथों में गईं।

कारण अथवा माध्यम कुछ भी हो, मणिका धूल धूसरित तो हो ही नहीं सकती। सका ध्यान स्थान तो आकाश गंगा में है और दीदी वहीं चली गईं हैं। वहीं से हमें गेति प्रदान करती रहेंगी। कोमल, अस्वस्थ शरीर परन्तु उनके अन्तर की निहित इतनी ात्म बल की शक्ति अवश्यमेव वह परम पिता परमात्मा की नैसर्गिक गोद मं पहुँच र अपना जीवन लक्ष्य पा चुकी हैं। हम सब उनके जीवन के बहुत निकट आये और नकी शक्ति को छूकर ही सौभाग्य को प्राप्त हुए।

सात्विकता पूर्ण जीवन शैली द्वारा जो आदर्श दीदी ने स्थापित किये वह प
और समाज के लिये अनुकरणीय हैं।

यदि दीदी ने तपस्या की है तो तपस्या कभी व्यर्थ नहीं जाती। उन्होंने
कर्त्तव्य का अति सुन्दर ढंग से पालन किया और अन्त में उसका फल भी प्राप्त कि
अपने स्त्री जीवन को अपनी सेवा से अंतिम समय तक कार्यरत रह कर
अभिव्यक्ति की, यह सब उनके मन की भावना की उच्चता का परिणाम था।

दीदी हमारे हृदयों की देवी थीं। परिवार की शोभा थीं, एक योग्य, पूर्ण
व्यक्तित्व इस संसार से विदा हो गया है, परन्तु प्रकाश तो सदा रहेगा ही। ज्योति
चक्षुओं को अन्त तक देखने में सहायता करती ही रहेंगी।

दीदी कहा करती थीं:

खुदी को कर बुलन्द इतना, कि हर तकदीर से पहले,
खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता तेरी रज़ा क्या है?

तो खुदी तो बुलन्द थी ही, प्रभु ने अवश्य रज़ा पूछी होगी।

प्रेम की धारा जो बही तो उसका रसास्वादन अमृत रूप में हम सबने किया
धन्य हुये।

दो परिवारों को प्रेम सूत्र में पिरो कर पूज्या दीदी ने यह जो कीर्तिमान स्था
किया वह अद्वितीय है।

उदारता की प्रतिमूर्ति पूज्या दीदी हमारे आस-पास ही हैं। वह भी प्रभु की
की भांति हमारे तन-मन में प्राण बनकर बसी हैं, बसी रहेंगी। उनके साथ जीवन
घड़ियां बिताने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उन्हें भुलाना कठिन है।

पत्र उनका अनुतरित रह गया। वात्सल्य पूर्ण, ममतामयी, कल्याणी मंगल
स्वरूपा दीदी की आत्मा जहां कहीं भी होगी, मेरी आन्तरिक आवाज़ सुनेगी तथा
जानती हैं कि मैंने पूर्ण रूपेण उनके पत्र को ग्रहण किया है, उनका यह अन्तिम
मेरी अमूल्य निधि है और मेरा सम्बल है।

टेलीफोन पर उनके अन्तिम शब्द थे "आप सब रौनक में बैठे हैं वहां, मैं
या न रहूं, मेरा आशीर्वाद सदा आपके साथ है।" अब वह अपनी प्यारी मां के प
प्रभु के चरणों में पहुँच गयी हैं।

वे सरस्वती देवी का साक्षात् स्वरूप थीं। विद्वता, पाण्डित्य, विवेक, शालीन
उनमें कूट-कूट कर भरी थी, ज्ञान का अक्षय भण्डार था उनके पास। केवल अर्जन
नहीं था विसर्जन भी करती थीं। विद्याध्ययन को सफल किया, अपने नाम को सार्थ
करती हुई हमारी दीदी ज्योतिपुंज की भांति ज्ञान के प्रकाश को फैलाती रहती थीं।

उनकी पूज्या माँ सर्वदा कहा करती थीं- "प्रकाश के माथे में त्रिशूल विराजम
है। इस कन्या में साक्षात् शिव की शक्ति निहित है।"

आगे की होने वाली घटनाओं का पहले से आभास हो जाता था, सुनकर आश्च
होता था। अपने गुरु जी पं० भगवत दत्त जी द्वारा उन्होंने अति कोमलवस्था में
"सुबोध कन्या" का प्रशस्ति पत्र प्राप्त किया। अपने आश्रम स्थल आर्य वानप्रस्थ
से भी बहुत दूर-दूर तक उनकी विद्वता की चर्चा चलती थी। सुन सुन कर हमें अ

पर्व का अनुभव था, और होता रहेगा।

मुख पर सौम्यता, वाणी में अति मिठास, मधुरता पूर्ण हास्य, कष्ट के समय हम सबका उत्साहवर्द्धन, हमारा मार्ग दर्शन उनके गुण थे। कर्त्तव्य पालन में दृढ़ता व उदारता उनके विशिष्ट गुण थे। प्रिय शशि रत्न बेटे के असमय चले जाने का दुःख उन्हें हर समय सालता रहता था। इसी कारण स्वास्थ्य गिरता चला गया, व्यवहार कुशल होने के नाते जहां सम्बंधों में नारी सुलभ कोमलता प्रदान करती थीं वहां पर पृथिवी की धुरि की भांति हमें उन्होंने दृढ़ता व शक्ति का भी दान दिया है। धन्य है उनका जीवन-धन्य हमारी दीदी। आप हमारे हृदयों में सदा अमर रहोगी। उनका जीवन सन्देश एक कर्मयोगी का सन्देश है। अन्त समय तक कार्यरत रहकर एक उच्च आदर्श स्थापित कर दिया।

आदरणीय भाभी प्रकाशवती रत्ना जी

मदन मोहन शास्त्री
बी/ १३६, मालवीय नगर, नई दिल्ली।

शरीर नश्वर है। आत्म तत्व कर्मानुसार दूसरे शरीर को प्राप्त हो जाता है, पर तीसरा कारण रूप शरीर सदा अमर है, मनुष्य जीवन में जो कार्यकलाप करता है वह सदा शाश्वत है, और उन्हीं के माध्यम से जीव के साथी और अनुयायी उनका स्मरण करते हुए अपनी जीवन की साधना को प्रभु में समर्पित करते हैं। जो व्यक्तित्व पूर्णता, स्थिरता एवं परिपक्वता को प्राप्त कर लेता है, वह सब के लिये आदर्श एवं अनुकरणीय बन जाता है।

ऐसा ही एक व्यक्तित्व था हमारी आदरणीया पूज्या भर्जाई श्रीमती प्रकाश रत्ना जी का। माता पिता ने बहुत सोच विचार कर नाम रखा होगा। विवाह से पूर्व माता पिता के सम्पूर्ण संस्कारों से स्वयं को शिक्षित किया। विवाह के पश्चात आप अपने पति श्री विद्यारत्न जी के गृह में आईं। सोने पर सुहागा मिल गया। विद्या के प्रकाश से गृहस्थ दमक उठा। आपने अपने पुरुषार्थ और सदगुणों से अपने और पति के नाम को सार्थक कर दिया। स्वयं को पूर्ण शिक्षित किया एवं गृहस्थ की पूरी ज़िम्मेदारियों को सहर्ष निभाया। उन दिनों हिन्दुस्तान का बटवारा हुआ था। आप पाकिस्तान से मेरठ में आये। सारा परिवार जिसमें दो भाई एक बहन एवं माता जी का सारा भार आपके कन्धों पर रहा क्योंकि पिताजी ने वानप्रस्थ ले रखा था। आपने कभी भी अपने दायित्व को निभाने में कमी नहीं की। स्वयं को पूर्ण विदुषी बनाने के पश्चात् राजकीय सेवा में कार्यरत होकर आपने अपने पति देव का साथ जीवन पर्यन्त निभाया। स्वयं कष्ट में रही पर किसी को कष्ट का अनुभव नहीं होने दिया। गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए एक पुत्र एवं एक पुत्री को उच्च शिक्षा से परिपूर्ण किया। उन दोनों को उच्च पदों पर स्थापित करवा कर समाज में एक समुन्नत आदर्श प्रस्तुत किया।

आपकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि आप उच्च पदों पर रहकर भी विनम्र रहीं और पति की सहगामिनी बन कर धार्मिक रीति से जीवन यापन किया। कुछ वर्षों के अन्तर से आप सेवा निवृत्त हुए। कार्य से निवृत्त होने के पश्चात् आपने

अपने दो वर्ष अपने सुपुत्र शशि रत्न के पास मालवीय नगर में बिताये।

आप दोनों ने अपने जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि यहां प्राप्त की। दो ने मिलकर आर्य समाज मालवीय नगर में आर्य पब्लिक स्कूल के नाम से निर्धन ए अशिक्षित छात्रों के लिये एक विद्यालय की स्थापना की। प्रधानाचार्य एवं प्रबन्धक रूप में दो वर्ष तक बिना पारिश्रमिक लिये स्कूल को आगे बढ़ाया। आपके आशीव से आज यह स्कूल दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करते हुए कक्षा आठ तक सफलता के शिखर पर पहुँच चुका हैं। आपकी आत्मा इस सांसारिक कार्य से सन्तुष्ट नहीं थ वह तो उस महान सर्वनियन्ता सर्वद्रष्टा को खोजना चाहती थी। इसी खोज में आ दोनों सुचारू रूप से अपने कार्य को उपयुक्त हाथों में सौंप कर आर्य वानप्रस्थ आश्र ज्वालापुर, हरिद्वार चले गये, गृहस्थ धर्म की चारो विशेषताएं आपमें पग-पग झलकती थीं।

स्वर्ग स्थितान इह जीवलोके, चित्वारि चिन्हानि वसन्ति गेहे।
दान प्रसंगोमधुरश्च वाणि, देवार्चनं ब्रह्मतर्पणं च॥

वानप्रस्थ आश्रम में सभी के दुःख-सुख की सहभागिनी बन सब व सम्मोहित कर लिया। ज्ञान की पराकाष्ठा तक पहुँच कर महानयज्ञों के उच्चतम ब्रह के पद को वर्षों तक सुशोभित किया। ऐसा प्रतीत होता है कि आपका अन्तिम प्रवच आत्मा और परमात्मा के मिलन को स्वीकारते हुए उसी में ही खो गया, और शान हो गया।

ऐसी पूज्या भाभी जी एवं माँ स्वरूपा देवी के चले जाने से जो क्षति इ गृह में हुई है, उसे पूर्ण कर पाना असम्भव है। ऐसी कर्तव्यपरायणगामी के चरणों मेरा शत् शत् प्रणाम।

एक संन्यासिनी के रूप में

वेदानुकूल मार्ग पर चलने वाले आदरणीय मणिराम कालड़ा के गृह में एक दिव आत्मा ने शरीर धारण किया जिसे प्रकाशवती नाम से अलंकृत किया गया। सात्विक संस्कारों में पलीं, समयानुसार शिक्षा प्राप्त करके उस देवी ने गृहस्थ आश्रम में प्रवे किया। और उसका जीवन आदर्शनारी के नाम को सार्थक करने में जुट गया।

अंत में सुलभ देवी के समान गुणों वाली त्यागमयी, तपस्विनी, सती साध्वी पतिव्रता नारी अपना सारा जीवन संघर्षों का वीरता से सामना करती हुई, अपने कर्तव्य का पालन करती हुई इस भव सागर से तर गईं।

और अपने मायके में प्राप्त उच्चज्ञान के अनुसार इस प्रकाश के पुंज प्रकाश रत्न ने अपने नाम को सार्थक कर दिया। गृहस्थ में रहकर अपने पति, सास-ससुर, ननदों देवरों की सेवा यथा शक्ति वह कर्त्तव्य पारायण नारी सतत अनथक रूप में करती रहीं।

गृहस्थ के बोझ में दबी वह प्रकाश रत्ना अपने पूज्य पति की आर्थिक स्थिति में वृद्धि करने में भी पीछे नहीं रहीं। अपनी बौद्धिक एवम् मानसिक शक्ति से उस नारी ने राजकीय विद्यालयों में कुशल अध्यापिका तथा कुशल, निपुण, शासिका के

रूप को भी सिद्ध कर दिया। अपने स्वास्थ्य की तनिक भी चिंता नकरते हुए उस वीर नारी ने अपनी संतान को ऊंची शिक्षा प्राप्त कराने में अपना पूर्ण योगदान किया।

सेवानिवृत्ति के बाद मालवीय नगर, नई दिल्ली में अपने बच्चों के पास रहते हुए सेवा भाव के अनुरूप आर्य समाज के अधिकारियों के आग्रह पर आर्य पब्लिक स्कूल की नींव रखी और लगभग दो वर्षों में अच्छी स्थिति में स्कूल छोड़कर पति के साथ आर्यवानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर चली गईं।

उस महान प्रकाश रत्ना ने एक संन्यासिनी के रूप में अपना सारा जीवन बिताया। अग्नि का गुण है कि जो भी पदार्थ उसमें आहुति के रूप में डाला जाए अग्नि उसे शीघ्र ही परोपकार मय भावना से सारे वातावरण में व्याप्त कर देती है, ऐसे ही दिव्य गुण प्रकाश रत्ना में थे। वह अनेक गुण सम्पन्ना थीं। गृहस्थ में रसोई, सिलाई, बुनाई ध्यान, ज्ञान आत्म विश्वास से परिपूर्ण वह नारी शांति, सहनशीलता, धैर्य, तपस्या, त्याग, सेवा की एक सजीव मूर्ति थीं।

आध्यात्मिक जगत् में अपने ज्ञान के भंडार में से एक सफल प्रवाविका के रूप में एक आदर्श सन्यासिनी बनकर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया।

स्वर्ण सी चमक, हीरों से अधिक प्रकाश बिखेरती हुई वह आदर्श नारी आदर्श पुत्री, आदर्श पत्नी, आदर्श मां, आदर्श बहन, आदर्श सन्यासिनी अंत में अपने निर्बल, जर्जरित शरीर को त्याग कर परमात्मा की चरण शरण को प्राप्त हो गईं।

हे परमात्मन्! उस महान आत्मा को शांति प्रदान करें। उसे जन्ममरण के बंधनों से मुक्त करके अपने पवित्र मोक्षधाम में स्थान दें।

हम उस महान आत्मा के श्रेष्ठ गुणों को ग्रहण करने की चेष्टा करें।

उस पवित्र आत्मा को हमारा शत शत प्रणाम।

मनोहर लाल 'विरक्त'
एवं अरोरा परिवार, मालवीयनगर

कर्मयोगिनी जीवन

वेदपाल विद्यालंकार
ब/२६३, सूरज मल विहार, दिल्ली-९२

स्वर्गीया श्रीमती प्रकाशवती रत्ना जी ने अपने जीवन को स्वनाम के अनुरूप सार्थक किया है तथा निष्काम कर्मयोगिनी के समान ज्ञान के प्रकाश को अथवा सत्यार्थ को प्रकट करने में समर्पित कर दिया। बहुआयामी व्यक्तित्व की धनी वे इस कलियुग में गीता में वर्णित कर्मयोगिनी की जीवन्त प्रतिमूर्ति थीं। उनका जीवन इतना संयमित, अनुशासित तथा मर्यादित था कि इस युग में उन्हें मर्यादा स्त्रियोत्तम से विभूषित करने में कोई अत्युक्ति न होगी। क्योंकि उन्होंने अपने प्रत्येक संबंध का निर्वहन मर्यादा में ही किया। चाहे वह पत्नी के रूप में अथवा माता, भगिनी, भाभी, अध्यापिका, आर्य समाज की सेविका के रूप में।

आर्य समाज के प्रति उनका समर्पणभाव अद्वितीय, अनुपम एवं अभूतपूर्व था। उन्होंनें चेतनावस्था के अन्तिम दिवस वानप्रस्थ आश्रम में प्रातःकाल अपने प्रवचन के

मध्य में औषधि का सेवन करके महर्षि दयानन्द के आर्य जाति के उद्‌बोधन के क
को पूर्ण करने का प्रयास किया और उसके कुछ काल पश्चात् अचेत होकर अ
जीवन की आहुति दे दी तथा मोक्ष को प्राप्त हुईं। क्योंकि उन्होंने अपनी आत्मा
महामृत्युंजय मंत्र के अनुसार सुगंधित एवं पुष्ट करते हुए इस शरीर से पृथक कर लि
तथा प्रकाश के वितरण द्वारा वैतरणी नदी पार कर ली। महामुनि व्यास महाभारत
कहते हैं-

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि
न हि मानुषवात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।

यथार्थ में उन्होंने इस देव दुर्लभ मानव शरीर का सदुपयोग करते हुए अ
सुयोग्य एकमात्र पुत्र शशि रत्न के स्वर्गवास पर शोकग्रस्त होते हुए अपने कर्मयोगि
के धर्म में लेशमात्र शिथिलता नहीं आने दी। इस प्रकार वे अपनी आत्मा की सद्
का मार्ग स्वयंमेव प्रशस्त कर गईं।

किसी कवि ने कहा है-

काँटों में उलझकर भी, खुशबू को लुटाना है
इस उम्र की राहों में खुशबू को चुराना है।
हंसना ही जीवन है, हंसते ही जाना है
यह आज तो अपनाया कल भी अपनाना है।
मेरी उनके प्रति श्रद्धांजलि है।

Mother ! you were a deity

O' affectionate mother! you left us when we needed you mo
Your thoughts were a binding force for all of us. A pure heart a
righteous life you were possessed with. You were an inspirati
for us to tread the path of righteousness.

We fully know you suffered for all of us only to see us flo
ish, but at the same time, you lived within, in constant devoti
towards the Divine This was amply evident from your facial e
pression, when you performed Yajna with us. This feature re
dered you capable of remaining in peace whatever the extern
circumstances. You kept your equipoise in all your sufferin
and worries. You lived always as if you were under the very c
ing eye of the Supreme. You were a divine mother. "Do nothin
try to feel nothing, that would be unworthy of the Divine Pre
ence" these words will continue to frame our future life. In sle
as in waking, let us feel in us the reality of your presence alway

We pray for you to have a lasting peace in Heaven.

Dr. Chander Prakash Mendira

Dr. Nutan Mendira

Son-in-law & Daugh

मां तुम सबकी परम श्रद्धेय

मां, तुम हम सबकी परम श्रद्धेय,
तेरी पावन निर्मल छवि लगी परम वन्देय।।
जीवन की तपती दोपहरी मिली तुम्हारी छाया,
सुख दुख के पर्याय ही बदले, जब साथ तुम्हारा पाया।।
जीवन के रंगों को सही अर्थों में तुमने जाना,
भाव अभाव का भेद कभी न तुमने माना।।
सदा लुटाये गुणों के माणिक मोती तुमने,
जिन सबके प्रकाश पुञ्ज से, हुए भाव हमारे दूने।।
वसुधा की गम्भीरता सहज में तुमने पाई,
सागर की गरिमा लगी छोटी, देख तुम्हारी गहराई।।
तुम्हारी सहज शीतलता ने दी शशि को कांति,
मानों उसको द्विगुणित कर शशि ने विश्व में बांटी।।
नूतन किसलिये न हो आशान्वित जब तुझे निहारा,
तेरी ममतामयी छवि ने झट दिया उसे सहारा।।
आज नहीं तुम बीच हमारे तो क्या कहना,
दिए तुम्हारे संस्कारों का हमने पहना गहना।।
हाथ पसारे बच्चे तेरे, मांगे तुझसे यही दुआयें,
कर्मशील बन जीवन से लड़, चुनौतियों में भी सुख हम पायें।।

श्रद्धाञ्जलि एक आदरमयी कर्मशीला माँ के प्रति
श्रीमती नीलम रत्न,
नई दिल्ली। (पुत्रवधु)

कुछ मोती-सीप

- अपनी विद्वता पर गर्व करना सब से बड़ी अज्ञानता है।
- जहां प्रार्थना है, वहां विश्वास है; जहां विश्वास है वहां स्नेह है; जहां स्नेह है वहां शांति है; जहां सत्य है, वहां प्रभु है; जहां प्रभु है, वहां आनन्द है।
- संन्यास का अर्थ जीवन से भाग जाना नहीं, भोग की कला सीखना है।
- अदभिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येत शुध्यति।
  विद्या तपोभ्याम भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।
- जो सुन्दर स्वभाव आदि गुणों को ग्रहण करते हैं, वे विद्वानों के प्यारे होके सबके अधिष्ठाता होते हैं। यजु0 14-25
- ''शरीरे भवः शरीरः'' शरीर धारी जीव ब्रह्म नहीं है, क्योंकि ब्रह्म के गुण, कर्म, स्वभाव जीव में नहीं घटते। (स0प्र0 एकादश समु0)
- कोई मनुष्य कर्म के बिना क्षण भर स्थित नहीं रह सकता। (ऋ0 1-68-3)

प्रकाशवती रत्ना द्वारा दिये गये कुछ प्रवचन

दशपदी विश्रुति

मुझे देवों के लिये सुसाधन जुटाने हेतु विश्रुति को समझना होगा और इसके स के लिए-आइये यजुर्वेद के एक मन्त्र की छाया में विश्रुति के दशपदी का चिन्तन करें, इस प्रकार है-

ओ३म् इड़े रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिति सरस्वती महिं विश्रुति।
एंता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतम् ब्रूतात॥ ।य०८-४३॥

इस आभायमान मन्त्र में विश्रुति के दस सम्बोधन, दस नाम हैं। इनसे उसका अ किया है कि तू मुझे सुसाधना बता। मानो दस पादों का मानसिक आह्वान किया है। अ से कर्ता के मन में आहूत प्रस्थापना होती है, एवम् तदानुसार संस्कार समंकित होते

विश्रुति का सामान्य तात्पर्य अथवा आशय अथवा अर्थ कीर्ति है। कीर्ति एक दो गुणों से भी मिलती है। विश्रुति सर्वांगीण है, जिसकी प्रत्येक गति, प्रत्येक कृति, चेष्ठा, तथा विधि कीर्तिकर हो, वह विश्रुतिमान और वह सर्वगुण सम्पन्न होता है।

इस मन्त्र में विश्रुति की कामना अथवा अभिलाषा करने वाला विश्रुति को स करता है, सुसाधना जानने हेतु ताकि दिव्यताओं की प्राप्ति हो। सर्वत: दिव्य होने की अ रखता है ताकि सकल दिव्यताओं से युक्त दिव्य होकर विश्रुतिमान हो सके।

विश्रुति! तेरे नाम हैं-इडा, रन्ता, हव्या, काम्या, चन्द्रा, ज्योति, अदिति, सरस्वती, और अघ्न्या। दस नामों में सुकृत समूह सन्निहित है। इनकी सफल साधना दिव्यताओं से ऋर विश्रुतिमान बनाती है।

१. पहला पाद इड़ा-ज़िसके दो अर्थ हैं-वाणी, स्तुति। दोनों को मिलाकर तो अ स्तुत्य वाणी से है। स्तुत्य एवम् प्रशस्त विश्रुति का इच्छुक जो बोले सोचकर, तराशकर, पर आधारित, अनुभूत, संश्रुत सत्यों का प्रकाशन करे-ऐसा अभ्यास करे। साधारण वाणी नहीं। वाणी-मधु जिह्वा, हिरण्य जिह्वा, शुचि जिह्वा, अग्नि जिह्वा, अथवा वाणी-सत्य पवित्रता।

२. दूसरा पाद-रन्ता=रमणीय-रमणीयता, पवित्रता, सादा सुन्दर विचारों की शु जीवन के व्यवहार में रमणीयता, प्रियता, संयम सदाचार।

३. तीसरा पाद-हव्या=हवि से हव्या, आहुति, शीतलता, सर्व हितार्थ, शुभ श्रेष्ठ सर्वइष्ट चिन्तन, हितभावना, सेवा, सबकी सुविधा देखना ही हव्या है।

४. चौथा पाद काम्या=कमनीय-कमनीयता, काम्यता। विश्रुति के साधक का स्वभाव, व्यवहार, कमनीय, आकर्षक हों। सब मुग्ध हों, उसकी कामना करें, सानिध्य करें।

५. **पांचवां पाद चन्द्रा**=आह्लादिता अथवा आह्लादित करने वाला अथवा वाली, इस वृत्ति से विश्रुति में चार चांद लग जाते हैं।

६. **छठा पाद ज्योति**=अन्तर्ज्योति। साधक के अन्तस्थल में आत्म प्रकाश जगमगाये, ब्रह्म ज्योति जगे। बुद्धि-मन का अवलम्बन तो स्थूल व दुर्बल है, थोड़ी दूर का साथी। ब्रह्म ज्योति के प्रज्ज्वलन वाला उषर्वुद्धा हो। साधक की विश्रुति को न काल मिटा सकता है, न युग हटा सकता है।

७. **सातवां पाद अदिति**=अखण्ड, अदम्य, अदीन। अदीन ही अदम्य होता है। अदम्य ही अखण्डता से व्रतों का पालक साधक होता है। उसकी संसिद्धि अखण्ड होती हैं, संसिद्धि से विश्रुति व्यापक व अमिट होती है।

८. **आठवां पाद सरस्वती**=मूर्धा के सर्वोच्च शिखर (सानु) और हृदय के सोम सागर से क्षरण करती हुई वाणी द्वारा प्रवाहित होती है। विद्या से रंच भर भी संबंध नहीं है। सत्व जब संशुद्ध, आत्मानि प्रबुद्ध होने पर और ज्ञान सानु व सोम सागर से क्षरित होकर वाग्धारा से प्रवाहित होते हुए सत्य का प्रकाश करता है तब वह स्वतः साधना का विषय है, अध्ययन अध्यापन का नहीं। विद्वान अविद्वान दोनों ही इसकी सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं।

विश्रुति के लिये सरस्वती चाहिये विद्या नहीं।

९. **नौवां पाद मही**=इयं पृथिवी मही-यह पृथिवी मही है। समस्त भूमि पर अखण्ड सुवासिनी प्रजा के परिवार हैं, वे महात्मा देश के प्यारे, विश्व के दुलारे बन विश्रुति का वरदान प्राप्त करते हैं।

१०. **दसवां पाद अघ्न्या**=जिसका हनन न हो, घात न हो, अन्तर्ध्वनि है-आत्मा की आवाज़, जिस का हनन, दबाना, अवहेलना करना, आत्म हनन-आत्मघात है। आत्मघाती को विश्रुति प्यार नहीं करती। जो अन्तर्ध्वनि के अनुसार कार्य करता है विश्रुति उसका वरण-आलिंगन करती है।

इस प्रकार विश्रुतिमान बनने हेतु हमें स्तुत्य एवं प्रशस्त वाणी, रमणीय व्यवहार, सर्व इष्ट चिन्तन, कमनीय एवं आकर्षक आचार, आह्लादयुक्त वृत्ति, ब्रह्मज्योति का प्रज्ज्वलन, अदम्य व्रतपालक, सरस्वती के धनी, विश्व के दुलारे बनें। अन्तर्ध्वनि को सुनकर तदानुसार जीवन यापन करना चाहिए, तभी मानव जीवन सफल होगा।

आज के युग में नारी और उसका कर्त्तव्य

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।।

प्रकृति ने नारी को अधिक प्यार और सम्मान दिया है, साथ ही उसे इस योग्य भी बनाया है कि अपने बहुमुखी दायित्वों का वहन भली प्रकार कर सके। कद और भार में नारी नर की तुलना में कुछ हलकी भले ही पड़ती हो पर यह उसके लिये सुविधा की बात है, जो उसे स्फूर्तिवान और क्रियाशील बनने में काम आती है। उसकी कोमलता, भाव संवेदन तथा सुन्दरता अपने परिवार को एक कोमल तथा मज़बूत

शृंखला में बांधे रहती है तथा परिवार प्रसन्न और विकासशील बनते हैं।

गृह यज्ञ की ब्रह्मा है:

वह न केवल गृह यज्ञ की ही ब्रह्मा है, अपितु समाज यज्ञ, राष्ट्र यज्ञ एवम् विश्व यज्ञ की भी ब्रह्मा है। वह मानव सृष्टि की रचयित्री, संचालिका है, मानव की जन्मदात्री, जीवन निर्मात्री है। यदि वह ब्रह्मा अर्थात् ब्राह्म गुणों से युक्त न होती तो पावन कर्त्तव्यों का निर्वहन कैसे कर सकती?

नारी क्या है?

वह स्वयं नहीं जानती। नारी के लिये अनेक शब्द आये हैं पर सर्वाधिक उपयुक्त शब्द स्त्री है। 'स्तृञ धातु' से 'स्त्री शब्द' की उत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ है आच्छादन, ढकना, फैलना, व्यापना, ढाकना। पुष्पलता के समान फैलाने वाली ढांपने वाली, शीतल छाया के समान आच्छादन करके ताप सन्ताप से रक्षा करने वाली होने से नारी का नाम स्त्री है। अत: वह आच्छादित करने वाली नारी है।

पुरुष सूर्य है, नारी पुरुष की पुरोगामी (अग्रगामिनी) उषा है। वेद में नारी को मानवी उषा कहा है, सुमंगली कहा है-वह मंगलप्रदा है।

नारी कोमलांगिनी अवश्य है किन्तु अतुल तप, धैर्य का साक्षात् अवतार, स्नेह सौहार्द की अक्षय राशि है।

कोमल अवश्य है किन्तु सहनशीलता का अजस्र स्रोत, सरसता की सरस सरिता गरल को पचा कर अमृत क्षरण करने वाली है। लज्जा और संयम का सुपावन संयोग है। चंचला भी है पर हृदय की शांति का सहज आधार है। निर्विकारिता की प्रतिमा है

वह-माता के रूप में आनन्दमय स्वर्ग,
पत्नि के रूप में सतर्क संरक्षिका।
पुत्री के रूप में अछूती ममता,
भगिनी के रूप में अनूठी आत्म निजता।
सभी गुणों की खान है साथ-साथ अशासनीय है,
शरीर के साथ-साथ मन भी कोमल है।

मनुष्य के कठोर शासन से मुरझाने लगती है किन्तु स्नेह, समादर व सौहार्दपूर्ण व्यवहार से कली की तरह मुसकाती है व फूल की तरह खिल उठती है। वह अशासनीय है-स्नेह चाहती है।

आज के युग में-

अगणित क्षमताओं और विशेषताओं का नर द्वारा शोषण होता रहा है। पुरुष ने उस सहचरी को दासी बना दिया है। उसके मानवीय अधिकारों का अपहरण किया है तथा दूसरे दर्जे का नागरिक बना दिया है। पग-पग पर उपेक्षा, तिरस्कार अवहेलना ने उसकी प्रतिभा व क्षमता पर भी कुठाराघात किया है।

पर युग ने अब करवट ली है। नारी की चेतना जग रही है। वह हर क्षेत्र में हर कार्य में हर व्यवसाय में अग्रणी हो रही है। सेना संचालन हो, प्रशासन हो, समाज सेवा हो, नेतृत्व का क्षेत्र हो, वह कहीं भी पीछे नहीं। प्रधानमंत्री तथा राष्ट्रपति के पद को

अपनी क्षमता एवं योग्यता से गौरवान्वित किया। ऐसी प्रतिभाशाली महिलाओं की गणना करें तो एक लम्बी श्रृंखला है। इन्दिरा गांधी, थैचर, भण्डारनायके, गोल्डा मायर, फिलिपीन की श्रीमती एक्विनो, इण्डोनेशिया की केमारो, जापान की रकोका डोई। भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की संगठनात्मक दिशा का नेतृत्व वीरांगना लक्ष्मीबाई ने किया था।

दुर्भाग्य की बात है कि भारत जैसे विशाल देश में जहां नारी का वर्चस्व था, उसकी प्रतिभा को कुंठित कर दिया है। आज नारी अपने विकास के लिये, क्षमता, प्रतिभा प्रदर्शित करने के लिये आकुल व्याकुल है।

कोमल भावनाओं के लिये विख्यात है:

मातृ हृदय की धड़कन के साथ-साथ भाव संवेदनायें भी तरंगित होती हैं। हृदय की ध्वनि तरंगों को सुनकर शिशु एक अनिर्वचनीय आनन्द में डूबा रहता है। डा0 साल्क ने इस विषय में प्रयोग भी किये हैं। मातृ हृदय की धड़कन के टेप को सुनकर नवजात शिशु का रोना बन्द एवं मुख मण्डल पर शांति और प्रसन्नता आ जाती है। अर्थात् मातृ हृदय के साथ उनकी मृदुल भावनायें भी जुड़ी रहती हैं। प्रश्न है इतने गुणों के होते हुये भी आज समाज में नारी को यथोचित स्थान क्यों प्राप्त नहीं? समाज व पुरुष तो दोषी है परन्तु मेरे विचार में कुछ नारी स्वयं भी इस दशा हेतु उत्तरदायिनी है। वह गृह साम्राज्य की साम्राज्ञी है लेकिन आज ''नारी स्वातंत्र्य'' की पाश्चात्य लहर ने उसे भटका दिया है। वह अपने गौरवपूर्ण पद को भूल बैठी है। इस पाश्चात्य स्वातंत्र्य की भूल भूलैयों में खो गई है। पाश्चात्य सभ्यता के फैशनों की नकल में अपने को ''मॉड'' बनाने की धुन में अपने कार्य क्षेत्र घर को भी भूल बैठी है। आज उसकी सभ्यता का मापदण्ड है क्लब, फैशन जिसने उसको गौरवमय पद से नीचे गिरा दिया है। वह भूल बैठी है कि स्त्री है, आच्छादिका है, मातृ है-निर्मात्री है।

अपने अंग-प्रत्यंग की आहुति देकर जिस शिशु को जन्म देती है उसके लिये आया या नौकर की व्यवस्था करना ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ बैठी है। वह भूल बैठी है कि वेद के शब्दों में वह धन्या, सुधन्या माता है जिसे अपनी सन्तान को स्थिर स्वभाव वाली एवम् सुखदायी बनाना है। गृह की सुव्यवस्था उसका परम पुनीत कर्त्तव्य है। वह साम्राज्ञी है, उसे घर की प्रजा को स्वस्थ, शालीन, योग्य व क्षमतावान बनाना है। लेकिन आज के विषाक्त वातावरण में उसका कार्य और अधिक गम्भीर हो गया है।

यद्यपि लज्जाशील होना उसका आभूषण है, किन्तु उसको विदुषी होकर सभाओं तथा कार्यों में पुरुषों के समान कार्य भी करना चाहिये। सार्वजनिक सभाओं में अपने विचारों से लाभान्वित करना चाहिये। उसे समाज का निर्माण करना है, अपनी विद्वता को दिशा देनी है, अपनी प्रतिभा का बहुमुखी विकास करना है। अपनी सन्तान को सुधन्या बनाना है। राष्ट्र को ओजस्वी, ब्रह्मचारी, वीर पुत्र देने हैं। विदुषी वीरांगनायें देनी हैं। अपने पति की सुखद सहचरी बनना है। उसे अपने लिये स्वतः गौरवान्वित स्थान बनाना है। लेकिन आज की भागदौड़ में खोकर यह नहीं भूलना है कि यदि वह पुरुष

की अपेक्षा अधिक परिश्रम करेगी तो इसका उसके स्वास्थ्य पर कितना घातक प्रभाव पड़ेगा? यद्यपि यह ठीक है कि पुरुष की अपेक्षा उसकी रोग प्रतिरोधी क्षमता अधिक है। नारी अस्वस्थ हो भी जाये तो शीघ्र ठीक हो जाती है। यह ठीक है कि अधिक बौद्धिक व शारीरिक श्रम से उसके स्वास्थ्य, सौंदर्य एवं लावण्य तीव्र गति से क्षीण होने लगते हैं। परन्तु आत्मबल की धनी नारी, आत्म विश्वास से ओत-प्रोत नारी आज लघु क्रतु नहीं रही।

साधनाशील प्रशिक्षित माता, साधनशील प्रशिक्षित पिता ही अपनी सन्तान को सुसंस्कृत बनाकर निर्माण कर सकते हैं। माता सन्तान के संस्कारों में विभुत्व अर्थात व्याप्ति की स्थापना करके उन्हें यावत्जीवन प्रेरित कर सकती हैं।

"Life is complete with wife by your side & with children at your feet."

नारी घर को आयतन बनाए जहां आने वाले सुख पाएं। वह भीतर व बाहर दोनों रूपों में अपने गुणों की सुगन्धि से महके, जहां नारी अपनी महत्ता से व अन्तःसुगन्ध से सम्पूज्या हो वहां जब उसका हृदय कलश सोमकणों से भर जायेगा, तब उसके सम्पर्क में आने वालों के लिये वह अनन्त सुख दात्री होगी।

आईये! हम सब मिलकर वेद के उस कथन को दोहरायें जिसमें नारी के स्वरूप को श्रेष्ठतम बताया गया है। उसकी परिधि को संकुचित न करके ऐसा विस्तार दिया है जिसका छोर द्यौ लोक सा श्रेष्ठ है-और वह है:

"मातृमान, पितृमान, आचार्यवान पुरुषो वेद।"

वास्तविक विद्वान

ब्रह्म यज्ञ में **''मनसा परिक्रमा मन्त्राः''** में दिये गये मन्त्रों को आत्मसात् करने में प्रयत्नशील हों। **''धृति क्षमा दमोऽस्तेयम् शौचमिन्द्रियनिग्रह, धीर्विद्या सत्यमक्रोधो''** इन दस धर्मों का जो पालन करता है, वह व्यक्ति विद्वान की श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है।

आईये! यजुर्वेद/१७-६६ के मन्त्र की छाया में विद्वान के बारे में जानने का प्रयास करें:

प्राचीमनु प्रदिशम् प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरोऽअग्निर्भवेह।
विश्वाऽआशा दीद्यानो वि भाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥

प्राचीम् प्रदशिम् अनु प्रइहि पूर्व प्रकिष्ट दिशा का अनुकरण करता हुआ प्रगमन कर।
(अग्नेः पुरः अग्निभव) अग्नि के सम्मुख अग्नि जैसा हो
(विश्वाः आशा दीद्यानः) समस्त दिशाओं को जगमगाता हुआ
(विभहि) सुप्रकाशित हो
(नःद्विपदे चतुः पदे) हमारे दो पायों चौपायों के लिये
(ऊर्जम् धेहि) उर्जा धारण कर।
तो आइये विद्वान् कौन हैं समझने का प्रयास करें।

१. पूर्व दिशा का अनुकरण करता हुआ जीवन पथ पर अग्रसर हो। पूर्व प्रमुख दिशा है, शेष उपदिशायें हैं और पूर्व प्रमुख दिशा पर आधृत हैं। पूर्व दिशा की अपेक्षा से ही अन्य दिशाओं की अधिक्षिति है। सूर्य उदय होता है अतः पूर्व को सूर्य-दिशा भी कहते हैं। उदय

होता हुआ सूर्य अन्धकार को तिरोहित करके सर्वत्र प्रकाश पूरता हुआ सतत् प्रगमन करता है, उसी प्रकार विद्वान का प्रथम लक्षण है कि वह उदयशील और प्रकाशप्रद रहता हुआ जीवन पथ पर अग्रसर होता रहे। उदय और आक्रमण अर्थात् चढ़ना और आगे बढ़ना दो निश्चित शील हैं। यही प्राची का अनुकरण है।

२. अग्नेपुरः अग्निर्भव-विद्वान को 'अग्ने' से सम्बोधित किया गया है, तू यहां अग्नि के समान अग्नि हो। (**अग्नेःपुरःअग्निःभव**) में गहन भाव है। अग्नि का एक अर्थ सूर्य भी है। इसीलिये प्राची को अग्नि की दिशा भी कहा गया है। सूर्य तो स्वतः सर्वस्व अग्नि है। उसकी प्रज्वलित ज्वालायें नौ लाख मील तक फैल रही है। ताप व प्रकाश करोड मील तक व्याप्त है।

विद्वान वह है जिसकी प्रेम-ऊष्मा और जिसका ज्ञान प्रकाश संसार में दूर-दूर तक देश-देशान्तरों तक फैले। विद्वान-विदुषी वह है जो संयम, सदाचार और आत्म साधन की द्युति से सूर्यवत द्योतित हो।

सूर्य के सामने खड़ा हो तो प्रतीत हो कि सूर्य के अभिमुख दूसरा सूर्य उदित व प्रकाशित है। योगमय दिव्य जीवन पद्धति विद्वान की आभा की प्रतिभा को जगमगा देती है। उसे आदित्य बनाकर सूर्य के सम्मुख खड़ा कर देती है।

३. तीसरा लक्षण है कि विद्वान समस्त आशाओं को जगमगाता हुआ सुप्रकाशित रहता है। आशा अर्थात् दिशा और उम्मीद को दिशा-दिशा में जन-जन की आशाओं का पूर्तिकरण विद्वान की चरम साध है। जन जीवन की विकट समस्याओं का समाधान करना, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना विद्वान का परम धर्म है। कब ?

(i) जब आसुरी प्रवृत्तियां, भोगविलास, जीवन को ध्वस्त कर रहे हों
(ii) धर्म की ग्लानि व अधर्म की वृद्धि हो।
(iii) सत्य का दलन और असत्य का प्रचार हो।
(iv) श्रेष्ठाचार का ह्रास, भ्रष्टाचार का विस्तार हो।

तब त्रस्त पीड़ित मानव समाज प्रत्येक दिशा में त्राण हेतु आशा भरी दृष्टि से देखता है। उस समय दिग्द्रष्टा विद्वान आते हैं।

मानव को संयम का पाठ पढ़ाने, धर्म की स्थापना करने, असत्य को मिटाने, भ्रष्टाचार का निवारण व श्रेष्ठाचार की प्रतिष्ठा स्थापित करने आते हैं।

४. चौथा लक्षण है (न द्विपदे चतुष्पदे ऊर्जमधेहि) मानव व पशु में ऊर्जा का आधायन करना, ऊर्जा, बल, पराक्रम, अन्न, जीवन तत्व का, विद्वान अन्न आदि के अभावों को भावों में परिणत् करते है। निर्जीवन में जीवन का संचार करके स्वस्थ सुडौल व सुन्दर बनाते हैं।

अर्थात् विद्वान वह है जो यज्ञशील और साधनशील हो। वह एकान्त में बैठने वाला उदासीन मुनि नहीं होता, प्रत्युत समाज की, राष्ट्र की, विश्व की उलझनों को सुलझाता है। संघर्षशील होता है।

विद्वान के गुण जो अपेक्षित हैं:

१. **उषर्बुद्धाः**-सूर्योदय से एक घंटा पूर्व उठने वाला तथा उस समय ब्रह्म मुहूर्त में उषा काल से जो बहुत कुछ प्राप्त कर लेता है, वही उषर्बुद्ध है।

२. **मधुजिह्वा**-वाणी शहद के तुल्य मिष्ट हो। मधुजिह्वा में बनावट व चापलूसी न हो।

३. **शुचि जिह्वा**-(i) वाणी में सत्य की पवित्रता, उपासना से जिह्वा पवित्र होती है।

सत्य के बिना जीवन भर की उपासना व्यर्थ है। मनः सत्येन शुद्धयति।

(ii) अभक्ष्य पदार्थों के सेवन से जिह्वा की शुचिता नष्ट होती है।

(४) अग्नि जिह्वा कठिनतम है पर है हितैषी, मित्र खरा-खरा बोलने वाले को स्वामी जी ने अग्नि जिह्वा कहा है।

(५) मित्त जिह्वाः-सूत्र रूप में बोलना परन्तु विचार करके बोलना। कुछ लोगों की आदत ऐसी होती है कि सोचते बाद में हैं बोल पहले देते हैं। पहले 'तोलो फिर बोलो' की उक्ति को अपनाना विद्वान की तेज़स्विता का परिचायक है।

(६) हिरण्य जिह्वाः-जिसमें तेजस्विता भरी पड़ी है। प्रत्येक शब्द सार्थक प्रकाश से भरा हो। वाक्य, व्याख्या, निबन्ध जो वाणी से उचारे जायें वे सब उज्जवल ज्ञान से एवम् प्रकाश से पूरित हों।

नारी जागरण का शंख नाद

यह शंखनाद चहुं ओर गुंजायमान हो रहा है। प्राच्य हो या पाश्चात्य, एक ही स्वर सुनाई पड़ रहा है कि अब नारी को सम्पूर्ण शक्ति के साथ जागना चाहिये, जिससे परिवार, समाज व राष्ट्र में सुख शांति का वातावरण बन सके, क्योंकि नारी के अन्तराल में जो मौलिक हैं वह समाज एवं राष्ट्र निर्माण के लिये आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण आधार हैं। सुन्दरता, भाव संवेदना, सेवा-साधना, परमार्थ पारायणता, सहयोग एवम् सहकारिता, परोपकारिता, पर दुःख का निवारण ही वे गुण हैं, जो नारी में हैं और सामाजिक एकता व समता के लिये महत्वपूर्ण हैं।

किन्तु प्रश्न यह उठता है कि ऐसी दिव्य विभूतियों से विभूषित रहकर भी नारी जाति आज दलित एवं पतित अवस्था में क्यों है? रूसी उपन्यासकार, नीति दार्शनिक एवं समाज सुधारक काउन्ट लियो टालस्टाय ने न केवल इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है, अपितु समाधान भी प्रस्तुत किया है। अपनी महत्वपूर्ण रचना What shall we do then ? की प्रत्येक पंक्ति में उसने नारी जागरण के शंखनाद को ध्वनि विस्तारक यन्त्र loud speaker की तरह और गति प्रदान की।

उक्त पुस्तक में वे कहते हैं कि नारी अपने आपको भूल चुकी है। अपने सच्चे स्वरूप की जानकारी उसे नहीं है, क्योंकि सदियों से मानसिक दासता की बेड़ियों में जकड़ी जो गई थी। मास्को की महिलाओं के बारे में वे लिखते हैं कि अपने जीवन को सुधारने की उनमें कोई इच्छा न थी। नारी के लिये पराधीन व परावलम्बी रहना ही उनकी नियति है। शेर का बच्चा सियारों में पलने के कारण सियार के संस्कार मिले, दहाड़ना भूल गया। किन्तु शेर के द्वारा आत्म बोध कराने पर पुनः दहाड़ने व शिकार करने में सक्षम हो गया, यही बात नारी जाति पर भी लागू होती है।

वह आत्म विस्मृति के जंजाल में फंसी पड़ी है। फलतः दीन हीन पतित बनी घर की चार दीवारी में भय की बेड़ियों में जकड़ी है। उसे बाहर नहीं निकलने दिया जाता।

किन्तु यह गहन तमस अधिक नहीं टिकेगा। गहन तमिस्रा की चरम सीमा की स्थिति में हाथ को हाथ नहीं सूझता, किन्तु यह स्थिति घड़ी दो घड़ी ब्रह्म मुहूर्त में

रहती है। फिर हंसता, मुस्काता सूर्य, मन भावन दृश्य, चिड़ियों का कलरव, गायों का रम्भाना, जनजीवन में जागृति का संचार प्रारम्भ हो जाता है। टालस्टाय आशावादी दृष्टिकोण अपनाते हुये कहते हैं-''हम पुरुष लोग जो पुश्त दर पुश्त स्त्रियों को इस दुर्दशा में लाते रहे हैं और अब भी उतारू हैं, एक दिन शुभ मुहूर्त में अचानक इस मोह निद्रा से जागृत होकर सारी अपनी स्थिति को सुधार डालेंगे। उस समय तक नारियां स्वयं अपने को आत्म विस्मृति के गहन कुहारे से हटा लेंगी और पुरुषों को सहयोग करने के लिये बाध्य करेंगी।

स्थिति उथल-पुथल मचाने वाली हो, इससे पहले ही पुरुष का कर्त्तव्य हो जाता है कि नारी को मानवोचित समता, एकता के प्रकृति प्रदत्त अधिकार उसे वापस कर दें। नारी के लिये भी उचित है कि दूसरे पक्ष से कर्त्तव्य पालन कराने हेतु गर्म नहीं नर्म उपाय तो करे, ताकि उपेक्षा करने वालों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो। इसके लिये साहस का उभरना आवश्यक है। प्रसुप्त इच्छा शक्ति जागृत हो। प्रयास के बिना उपलब्धियों से भरे वातावरण में भी अभावग्रस्तता के कुचक्र में पिसना पड़ेगा।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है जो वातावरण से सीखता है। फिर नारी क्यों भूली है?

क्योंकि उसके सामने उछाल व उभार की परिस्थितियां नहीं आईं जिसे देखकर वह उछले व उभरे।

अच्छा हो यदि नारी की क्षमता और गरिमा को बोध कराने वाले सभी साधन समूची मनुष्य जाति की विचारधारा को झकझोरे। उत्साहवर्धक तथ्य, घटनाक्रमों को खोजा व संजोया जाय। आवश्यक तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरणों का बड़ा समुदाय संग्रहीत तथा प्रचारित करें। इसके लिये लेखनी, वाणी, नाटक, अभिनय, फिल्म, वीडियो, चित्र प्रदर्शनी आदि का सदुपयोग किया जा सकता है। नारी जागेगी और जागरण का शंखनाद करती हुई स्वयं आगे बढ़ेगी। दूसरों को भी आत्म विस्मृति से हटाकर प्रेरणा प्रोत्साहन देगी। इसी से समाज में सुख शांति का चिरस्थायी वातावरण बनेगा और नारी को वर्चस्व प्राप्त होगा।

इष्टका देवी

इष्टका अर्थात् ईंट एक महत्वपूर्ण सन्देश देती है। य. १३/२१ मन्त्र में देखें क्या सन्देश मिलता है?

या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि।
तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा-वयम्॥ (य० १३-२१)
देवि इष्टके! शतेन सहस्रेण प्रतनोषि शतं सहस्र
अर्थात असंख्य ढंग से विस्तारती है।

विरोहसि-विरोहण करती है।
हविषा-हवि से आहुति से,
विधेम-स्थापना करे
तस्यास्ते वयम-उस तेरी हवि (स्थापना की हवि से)

१. शत सहस्र- यह शब्द असंख्यता को प्रकट करते हैं। इष्टक- ईट-अनेक प्रकार-आकार व मिट्टी-पत्थर, सीमेन्ट, मारबल की देवी या देव-जिसमें दिव्यता हो-स्त्रीलिंग होने के नाते इष्टका देवी-दिव्य गुण हैं, महान गुण जिसमें हैं। अत: इष्टका देवी है।

यह प्रश्न उठता है कि क्या जड़ पदार्थों में भी दिव्यता होती है? अवश्य होती है।

२. सम्पूर्ण सृष्टि दिव्य है। कण-कण में दिव्य देव की दिव्यता है। कण-कण, परमाणु-परमाणु में दिव्य देव रम रहे हैं।

ईशावास्यमिदम् सर्वं यत् किंच जगत्याम् जगत्।

सर्वेश समस्त सृष्टि में बस रहे हैं। सबमें दिव्येश की दिव्यता भी सन्निहित है। कुछ भी उससे रहित नहीं है। बुरे से बुरा कहे जाने वाले पतित से पतित, पापी से पापी मनुष्य में भी कहीं न कहीं दिव्यता छिपी है परन्तु उस दिव्यता के दर्शन के लिये एक दृष्टि-देखने की क्षमता चाहिये। तो प्रश्न उठता है ईंट में क्या दिव्यता है?

ईंट में महान दिव्यता है। प्रतनोषि और विरोदसि। इन दोनों क्रिया पदों में इष्टका की दिव्यता का गूढ़ संकेत है।

प्र-तनोषि-प्रकृष्टतया चतुरतया, यथेच्छ विस्तारित है। विरोदसि- वि=विशेषतया, विविधतया, रोदसी-प्रस्फुटित, अंकुरित, उगती, आरोहण करती-ऊंची चढ़ती है।

शत सहस्त्र अर्थात असंख्य इधर-उधर ऊपर नीचे विस्तारती, ऊपर चढ़ती है। बिखरी रहे तो कोई अस्तित्व नहीं है। कुशल कारीगर सुव्यवस्था से, योजनाबद्ध गारा सीमेन्ट से जमाता जाता है तो ऊंचाई को प्राप्त हो भवन बन जाता है, बड़े-बड़े विशाल भवन, ऊंची अट्टालिकायें इष्टकाचयन का चमत्कार है। जब ईंट विस्तारती व आरोहण करती है तभी भवन भुवन विशाल क्षेत्र में विस्तारते व आकाश की ओर आरोहण करते हैं। यह नगर, दुर्ग, पुल भवन सब इष्टिका की कृति हैं, ईंट की दिव्यता के द्योतक हैं।

ईंट के नीचे ईंट बोझ सह रही है। ईंट समूह भवन के रूप में खड़ा है। ईंटों की दीवारें और उन पर सधी है छत, इन कमरों में धन, जन सब सुरक्षित हो गये। दीवार पर प्लस्तर, पुताई, रंगाई, सजावट, ईंट छिप गई। हर वस्तु की चर्चा है ईंट की नहीं।

ईंट अन्तर्निहित है, समाहित है, संस्थित है और भवन बना खड़ा है।

कितनी अनासक्त, निर्लेप, साधपारायण, धीर, शांत, निर्यश, अविचल, निष्काम, कितनी सहनशील, तप:पूत और समाहित है ये ईंट-यह देवी इष्टका, दिव्य गुणों से युक्त है और दिव्य सन्देश दे रही है, सचमुच तू धन्य है।

३. त्वष्टा-कुशल कारीगर यदि जीवन भवन को सुविस्तृत सुविशाल और उदात्त बनाना चाहे तो धैर्यपूर्वक साधना की एक-एक इष्टका चयन करनी होगी। यदि साधना की एक-एक ईंट सर्वता चयन करते रहेंगे तो एक दिन अवश्य जीवन भवन इतना

व्यापक और ऊंचा उठ जायेगा कि इस जीवन पर संसार आश्चर्य करेगा। स्वयं हमें भी आश्चर्य होगा। ईंट छोटी हो या बड़ी, भवन में सबका समान महत्त्व है। ऐसे ही जीवन भवन के सुनिर्माण में छोटी से छोटी व बड़ी से बड़ी साधना का महत्वपूर्ण स्थान है। जो साधना में छोटी-छोटी बातों की उपेक्षा करता है, उसका जीवन भवन सुष्ठु नहीं बनता, उसका सुनिर्माण नहीं होता। अतः छोटी-छोटी बातों के सद् अभ्यास से बड़ी-बड़ी साधनायें भी सम्भव हो जाती हैं।

साधू तट पर माला जप रहा था, पास में बैठे ब्राह्मण ने पूछा यह जप किसलिये कर रहे हो? उत्तर-स्वर्ग प्राप्ति हेतु, ब्राह्मण मुट्ठी-मुट्ठी रेत डालने लगा, साधू के पूछने पर उत्तर मिला, पुल बना रहा हूं, साधू ने कहा पुल के लिये इंजीनियर, श्रमिक, सामान, लोहा आदि जुटाना पड़ता है। उलटकर ब्राह्मण बोला-मंत्र जप से स्वर्ग नहीं मिलेगा। संयम, ज्ञान, सेवा, परमार्थ जैसे पुण्य चाहियें तब स्वर्ग मिलेगा।

भवन में ईंटों का सुष्ठु चयन भी तभी हो सकता है जब कारीगर कुशल हो और चूना, गारा, सीमेन्ट भी ठीक हो। उसी प्रकार जीवन भवन का सुन्दर निर्माण कब होगा? जब १. आत्मा त्वष्टा, उदबुद्ध हो २. साधक के अन्तःकरण में श्रद्धा का सीमेन्ट हो। ३. भवन का नक्शा साधक की आंखों के सामनें हो अर्थात् आत्मा नियोजन साधक के सम्मुख हो। यह नियोजन आत्म-चिन्तन से प्राप्त होता है। आत्म बोध से कर्मकुशलता आती है। तो

(१) साधना रूपी ईंट (२) श्रद्धा रूपी सीमेन्ट, (३) नियोजित चयन से सुविशाल समुदात्त जीवन भवन बनता है।

व्यक्ति के पश्चात यदि कुल परिवार के विषय में सोचें तो इसे सुन्दर, स्वच्छ, उच्च बनाने के लिये भी इष्टका चयन का आदर्श सामने है,

गृहपति-पत्नि- त्वष्टा बनें
छोटे-बड़े सदस्य- इष्टका बनें
प्रेम का- सीमेन्ट हो
परस्पर परामर्श से नियोजन करें तो परिवार भवन शोभनीय व सुन्दर बनता है।

सामाजिक/राष्ट्रीय भवन हेतु सुष्ठु सुप्रेरणा देती है
(१) सुन्नेता-त्वष्टा
(२) एकता- सीमेन्ट
(३) बालक, बालिका, जन मानस-ईंट
(४) नियोजन का आधार-सुपरिष्कृत संस्कृति एवमं आदर्श परम्पराएं।
स्वार्थ रहित ही आत्म श्रद्धा से साधना हो तो समाज व राष्ट्र का भवन अतिशय विशाल, अज्ञेय, बलिष्ट होकर विश्वशिरोमणि बनता है।

अतः किसी भी भवन की विशालता, उर्ध्वता में प्रमुख स्थान ईंट का है।

कथानक के माध्यम से भर्तृहरि का श्लोक

उदाहरण:- महाभारत के युद्ध के बाद युधिष्ठिर को इतना नरसंहार देखकर तीव्र ग्लानि हुई। अशान्त मन को शान्त करने हेतु अपने भाईयों, द्रौपदी एवम् कृष्ण जी के साथ तीर्थ यात्रा का विचार किया। कृष्ण जी ने कार्य में व्यस्तता के कारण जाने में असमर्थता प्रकट की और कहा कि मेरे स्थान पर आप इस तुम्बी को लेते जाओ। जिस-जिस तीर्थ स्थान पर जाओगे इसे भी ले जाना। प्रत्येक नदी में स्नान करवाना एवं मंदिर के दर्शन भी। वे लोग चले गये और उनका तीर्थ यात्रा का भ्रमण जब पूर्ण हो गया और लौटे तो श्रीकृष्ण जी को तुम्बी लौटाई और बताया कि इस तुम्बी को प्रत्येक पवित्र नदी में स्नान करा लाये हैं। श्रीकृष्ण ने उसी सूखी तुम्बी को पिसवाकर उसका चूर्ण बनवाया और सभी भाईयों को खाने को दिया। युधिष्ठिर का मुंह भी कड़वाहट में भर गया और थू-थू करने लगे। श्रीकृष्ण बोले-अरे यह तो तीर्थ यात्रा कर आई है, कैसे कड़वी है? बोले-वैसे ठीक है, केवल तीर्थ स्नान से कोई पवित्र नहीं होता, भीतर ज़ब तक कि मन की नदी में स्नान न करें जिसमें संयम का जल है, शील धैर्य रूपी जल तरंगें व कंगूरे हों। यदि मानव सत्पुरुषों की श्रेणी में सम्मिलित होना चाहते हैं, प्रेरणा स्रोत बनना चाहते हैं तो भर्तृहरि के शब्दों में उसे कुछ उपाय करने चाहियें।

श्लोक इस प्रकार है:-

तृष्णां छिन्धिभज क्षमां जहि मदं पापे रतिं माकृथा:,
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधु पदवीं सेवस्व विद्वज्जनम्।
मान्यान्मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रच्छादय स्वान्गुणान्,
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सताम् लक्षणम्।।

तृष्णाम् छिन्धि	-	लालच को काट फेंक।
क्षमाम् भज	-	सहनशीलता को धारण करो।
मदम् जहि	-	गर्व को नष्ट करो।
पापे रेति मा कृथा:	-	पाप कर्मों में प्रीति मत करो
सत्यं ब्रूहि	-	सत्य बोलो
साधु पदवीं अनुयाहि	-	विद्वानों की सेवा करो।
मान्या मानय	-	पूज्य पुरुषों का आदर करो
विद्विष:अपिअनुनय	-	शत्रुओं का भी मान रखो।
स्वान गुणान् प्रच्छादय	-	अपने गुणों का विस्तार करो
कीर्ति पालय	-	अपनी कीर्ति-यश की रक्षा करो
दुखिते दयाम् कुरु	-	दीन दुःखी जनों पर दया करो
एतत् सताम् लक्षणम्	-	ये सब श्रेष्ठ पुरुषों के लक्षण है।

आइये प्रत्येक पहलू अंग-भाग-अंश पर विचार करें।

१. तृष्णाम छिन्धि-तृष्णा की बेल को काट दो। यह तृष्णा मनुष्य को अनेक नाच नचाती है। इसके रहते हुये स्वाध्याय, साधना व सन्ध्या उपासना कुछ भी नहीं हो सकता। यह ऐसी जंजाल वाली बेल है-लता है जो जकड़ लेती है। तभी हम प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं। **उदुत्मम् वरुण पाश मस्मदवाधमम् विमध्यमम् श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम् अर्थात्-परमात्मा!** हमारे तीनों पाशों को काट दो, हम तीनों पाशों से छुटकारा चाहते हैं। उत्तम पाश को भी काटना है-अहंकार, लोकेष्णा से कोई महा पुरुष नहीं बच सकता, न संसार की दृष्टि में न अपनी दृष्टि में। उत्तम पाश को काटकर ही श्रेष्ठ बन सकते हैं।

२. भज क्षमाम्-सहनशीलता को धारण करो, उत्तम पुरुष ही क्षमाशील होते हैं। साधारण व्यक्ति दूसरों के कृत्यों को भूलते नहीं और अवसर मिलते ही बदला लेते हैं। स्वामी दयानन्द सरीखे ही अपने घातक को अभयदान देते हैं, क्षमा कर देते हैं।

३. जहिमदम्-गर्व और अहम् को छोड़ दो। मद अभिमान बड़ा बली शत्रु है। मद, अहंकार का नशा बड़ा घातक होता है। इसका उतरना भी बड़ा कठिन होता है। उसे समाप्त कर दो तभी कल्याण है।

४. पापेरति माकृथा-पाप कर्मों से प्रीति मत करो। **'पुण्ये रति'** अर्थात् पुण्य से प्रेम करो। तभी मानव चमक उठता है और यशस्वी बनता है।

उदाहरण: बम्बाई में श्री गोविन्द रानाडे मुख्य न्यायाधीश थे। दो घातकों के प्रकरण का निर्णय होना था। श्री रानाडे ने पूर्ण निर्णय लिखकर रजिस्ट्री कराने के लिये नौकर लड़के को दिया। इस निर्णय में सज़ा लिखी थी। लड़के ने लालच में आकर ग़लत व्यक्ति को लिफाफा दे दिया और वापिस आकर बताया कि वह लिफाफा खो गया है। निर्णय घोषित होने से पूर्व ही समाचार पत्रों में छप भी गया। घर वालों ने बड़ा बुरा भला कहा किंतु श्री रानाडे शान्त रहे। चौथे दिन किसी के पूछने पर रानाडे बोले-जब इस लड़के का पिता मृत्यु शैय्या पर था, उसने इसे मुझे सौंपा था और मैंने इसके पिता को वचन दिया था कि मैं इसका संरक्षक पिता बनूंगा। अब अपने वचन को कैसे तोड़ दूँ? वह लड़का दूर खड़ा यह सब सुन रहा था। इस अगाध प्रेम व अपने निन्दनीय अपराध को सोचा और ग्लानि से भरकर उनके चरणों से लिपट गया, खूब रोया और आगे से अच्छा बनने का वचन दिया और उसका जीवन चमक उठा। वास्तव में पुण्य से प्रेम करने से जीवन चमक उठता है।

५. सत्यं ब्रुहि-सदा सत्य बोलो। सत्य मार्ग के पथिक बनो तभी अनुमतिमान बन सकोगे। मन-वचन-कर्म-शुचिता से सत्य बोलो।

६. साधू पदवीम् अनुयाहि-विद्वानों की सेवा कर के साधुओं के पदचिन्हों का अनुसरण करो। यद्यपि यह मार्ग कठिन है और इस मार्ग का पथिक धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। असाधू मार्ग पर तेज़ी से दौड़ता है। प्रकृति में भी यह देखने को मिलता है। मीठे रसीले फल के वृक्ष धीरे-धीरे बढ़ते है जबकि कटीले कड़वे झाड़ झंखाड़ तीव्र

गति से फैल जाते हैं।

मन तो मनुष्य को भटकाता है, उसे साधू के वचन नहीं मानने देता, अपितु मन असाधू के साथ रहना चाहता है क्योंकि वह मन के अनुकूल बोलते हैं, जैसे रजनीश। वह न साधू थे, न विद्वान मनीषी। हां! उन्होंने लोगों की श्रद्धा का अन्धा दोहन अवश्य किया। हमें उन साधुओं के पास जाना है जो विद्वता का दोहन करते हैं।

७. **सेवस्व विद्वज्जनम्**-महानता से नाता जोड़ना अप्रत्याशित सौभाग्य का द्योतक है।

८. **मान्यान मानय**-पूज्य पुरुषों का आदर करो। मानने योग्य का सम्मान करो। पूज्यों का तिरस्कार मत करो। आज यही हो रहा है। मनु महाराज ने तभी कहा था-जहां अपूज्यों की सेवा और पूज्यों का अपमान होता है वहां अकाल, मृत्यु व भय तीनों विराजमान रहते हैं।

९. **विद्विषः अपि अनुनय**-शत्रुओं का भी मान रखो। उनके संहार की योजना मत बनाओ। इससे सारा समय नष्ट होगा, जो श्रेयस्कर नहीं है। स्वयं साधना के क्षेत्र में अपना उत्थान करो। ऐसा बनो कि शत्रु तुम्हारे प्रभाव से शत्रु न रहे, मित्र बन जाय। उन्हें तुम दण्ड देने का प्रयास न करो, प्रभु के न्याय पर छोड़ दो। दयानन्द ने कभी बदला नहीं लिया। इसी कारण उनके शत्रु उनके मित्र बने। गाली देने वालों ने जब उन्हें शान्त मन से समाधि में मस्त देखा तो लज्जित होकर क्षमा मांगी और मित्र बने। उनकी तेजस्विता बढ़ी क्योंकि किसी के प्रति दुर्भाव नहीं था। प्रभु से भी यही प्रार्थना करें कि मेरे शत्रु, अहित करने वाले मेरे मित्र मेरे हितैषी बनें।

१०. **स्वान गुणान प्रच्छादय**-अपने गुणों का विस्तार करो, कैसे? दूसरों के गुणों को उजागर करके। वह खल हैं जो दूसरों के छोटे-छोटे दोषों को दूर से देख लेता है, उनकी गणना करता है, हृदय में नोट करता है और अपने बड़े-बड़े दोषों को देखता हुआ भी नहीं देखता। दूसरों के गुणों को देखो और अपने में धारण करो और उनका विस्तार करो न कि सर्वत्र अपने गुणों की निरर्थक चर्चा करते रहो।

११. **कीर्ति पालय**-सम्मान की चिन्ता न करो, सच्चा ब्राह्मण सम्मान से दूर भागता है। कीर्ति की चाह करो। कीर्ति चांदनी सी धवल है। उसके लिये प्रपंच नहीं करने पड़ते। वह स्वतः ही सत्गुणों, सच्चरित्रता व परोपकार से बढ़ती है। कीर्ति संसार का सबसे बड़ा धन है। यह अमर है, कीर्तिवान ही वास्तविक जीवित है।

१२. **दुखिते दयाम् कुरु**-दीन दुःखी पर दया करो। जो दूसरों को प्रसन्न, सम्पन्न एवं ऐश्वर्यशाली देखकर प्रसन्न होता है वही सन्त है। वही श्रेष्ठ पुरुष है जो दुखियों के दुःख से द्रवित हो उठता है, वही सज्जन है, साधक है। वाल्मीकि क्रौंच वध को देखकर द्रवित हो उठे और काव्यधारा प्रस्फुटित हो उठी। उपरोक्त गुणों से युक्त व्यक्तियों के जीवन ही निखर उठते हैं, वही सच्चे सन्त हैं। बिना मंदिर, बिना तीर्थ गये धीरे-धीरे वे इन गुणों को धारण करते हुये उनकी आत्मा पवित्र, शुद्ध व निर्मल हो उठती हैं।

अनुमति

मानव की गति अथवा बुद्धि के कई प्रकार हैं। आईये! निम्नांकित मन्त्र की छाया में इस शब्द पर चिन्तन करें:

अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत् तिष्ठतिचरति यदु च विश्वमेजति।
तस्यास्ते देवि सुमतौ स्यामानुमते अनु हिमंससे नः॥ (अ ७/२१/६)

(अनुमति इदम् सर्वम् बभूव)	- अनुमति यह सब हुई-2 है
(यत् तिष्ठति)	- जो ठहर रहा है।
(च यत् चरति)	- और जो कि चल रहा है।
(विश्वम् एजति)	- अनुमति उस सबको हिला देती है।
(देवि अनुमते)	- हे देवी अनुमति
तस्यः ते सुमतौस्याम्	- उस तेरी सुमति में रहें
(हि नः अनुमंससे)	- तू ही हमें अनुमति देती है।

१. **मति**-सहज स्वाभाविक चेतना instinct तो प्रत्येक प्राणी में स्वभावतः अन्तर्निहित होती है, जिसके द्वारा प्राणी स्वजीवन का निर्वहन-रक्षा करता है। मनुष्य से नीचे की योनियों में मति सदा मति ही बनी रहती है, प्रथम तो इनमें मति का विकास होता ही नहीं, विशेष प्रशिक्षण हुआ तो सीमित विकास होता है। तोता मैना आदि को प्रशिक्षण से सिखाया तो जा सकता है पर वे स्वतः अपनी उन्नति अवनति के विषय में नहीं सोच सकते। मति केवल पशु संस्कार है तो जन्म के स्वभाव से सब प्राणियों में सन्निहित होता है।

२. मनुष्य में मति का विकास सदा से होता रहा है और रहेगा जो चार प्रकार से होता है:

(१) कुमति (२) विमति (३) सुमति (४) अनुमति

१. **कुमति**-जब विकसित बुद्धि बुराई की ओर प्रवृत्त होती है। कुमतिवान स्व तथा पर सबके लिये बुरा ही सोचता है। परिणामतः कर्म भी 'कु' ही करता है। कुमति, दुमर्ति, भ्रष्टमति पर्यायवाची शब्द हैं। विचारना, आचरंण, प्रेरणा, परामर्श सब 'कु' ही होते हैं। स्वयं भी ऐसा ही सोचता है। कुमति शिक्षित अशिक्षित दोनों प्रकार के लोगों को दम्भी, कपटी, भ्रष्टाचारी बना देती है। कुशिक्षा, कुसाहित्य, कुसंगति, कुविचार से कुमति की प्राप्ति व वृद्धि होती है। पठित यदि कुमतिवान हो जाये तो अपठित की अपेक्षा समाज की अधिक हानि करता है। कुमति व्यक्ति व समाज दोनों के लिये भयंकर अभिशाप है। कुमति व्यक्ति व समाज दोनों के लिए भयंकर अभिशाप है। जहां कुमति तहां विपत्ति निधाना। कुमतिवान 'स्व' व पर दोनों के लिये भारी अभिशाप है। इससे आपत्तियां विपत्तियां आती हैं और उपद्रव होते हैं।

२. **विमति**-विविध विचलित मति। विकसित मति में जब विचलता विविधता आ जाती है तब विमति कहलाती है। एक क्षण में कुछ सोचा, दूसरे में कुछ कुछ सोचना, कुछ करना अर्थात् विमति उसे अतिशय अस्थिर व चंचल बना देती है। एक

निर्णय पर कुछ दिन आचरण किया फिर परित्याग, नित्य निर्णय बदलते हैं। दीर्घकाल तक कोई अभ्यास चालू नहीं कर पाता। तन्मयता के साथ किसी शुभ श्रेष्ठ साधना नहीं लग सकता। सब काम अपूर्ण व अधूरे रहते हैं और मस्तिष्क घूमता रहता है। ग की तरह, चंचल, बकरी की तरह डरपोक। विमति 'सु' व 'कु' दोनों ओर प्रवृत्त है। विमतियुक्त संशयशील, प्रमादी, आलसी पर दोषदर्शी, कुतर्की कायर व शिथिल चरित्र के होते हैं। दूसरों को भी वैसा बना देते हैं। समाज में विषमता फैलाते हैं। व्यक्ति व समाज दोनों के लिये विनाशकारी।

३. सुमति-विकसित मति जब 'सु' की ओर प्रवृत्त होती है, तो अपने व दूसरों सब के लिये हितकारी है। सुख का उत्कृष्ट सोचना, सुकर्म करना, किसी का बुरा सोचने व करने को उचित न समझना, सरलता व साधुता से व्यवहार का सोचना, स्वयं को भद्र, श्रेष्ठ, सदाचारी बनाना और दूसरों को भी ऐसा बनाना, सुविचार करना, प्रेरणा परामर्श, समुति देना। शिक्षित अशिक्षित दोनों को सरल, शिष्ट, संयमी, सेवाभावी, मर्यादाशील, सुशील, शालीन, विनम्र, सुभाषी, सदाचारी, परोपकारी, धर्मात्मा सुमति ही बनाती है। सुमति वाले लोग पठित व अपठित दोनों प्रकार के व्यक्तियों को समान रूप से और इस प्रकार समाज का भला चाहते हैं। सुमतिवान व्यक्ति, समाज, राष्ट्र सब के लिये सर्वश्रेष्ठ वरदान है।

४. अनुमति-मतियों में सर्वोपरि-यह अर्थ है। अनु उपसर्ग से बनने वाले शब्द-

अनुभाविनी	अनुगामिनी	अनुसारिणी
अनुबाधनी	अनुप्रेरिका	अनु उदात्तमति

अनुकूल और आत्मा के पीछे चलने वाली मति-

आत्म प्रेरित मति न्याय, सत्य, धर्म की अनुमोदिता सुपथ पर साधना की प्रेरिका मति सुसंस्कृत, सुपरिष्कृत, सुदृढ़, शुद्ध, पवित्र, सात्विक, सुस्थिर अडिग मति। तो स्पष्टतया अनुमति मति की सर्वोच्च व सर्वश्रेष्ठ, विकसित अवस्था है। आत्म चिन्तन, आत्म निरीक्षण, आत्मबोध, विवेक, स्वाध्याय, महापुरुषों के जीवन चरित्रों से अनुशीलिता, प्रार्थना, ईश्वर भक्ति, ईश विश्वास, सुस्वास्थ्य तथा सतत सत्याचार से अनुमति का सम्पादन होता है।

अनुमति और सुमति में अन्तर-

१. सुमति सुपथ साधना पर बढ़ाती है। सुमतिवान कठिनाईयों से पराजित हो सकता है, साधना का त्याग कर सकता है।

परन्तु अनुमति टक्कर लेने तथा कठिनाईयों को पार करने की प्रेरणा देती है। अनुमति सुमति की तरह परिस्थितियों से परास्त नहीं होती, बीच में नहीं रुकती, अन्तिम छोर तक पहुंचती है।

२. सुमति सुविधा चाहती है। परन्तु अनुमति विपदाओं से अठखेलियां खेलती हैं

३. सुमित विराम लेती है। परन्तु अनुमति हाथ में ली साध को सिद्ध सफल करके भी विराम नहीं लेती। नित्य नई साध में विरत रहती है।

४. सुमति विफलता से कुण्ठित होती है। सुमति साधनों की प्रतीक्षा करती है। सुमति संसार का अनुगमन करती है। परन्तु अनुमति अधिक सुतीव्र, सुतीक्ष्ण, सुपरिष्कृत होती चली जाती है। यह स्वतः अग्रसर होती है। संसार अनुमति का अनुगमन करता है।

५. सुमति स्वप्न देखती है। यह सुकार्य की कल्पना करती है परन्तु अनुमति उन्हें सार्थक करती है और कल्पना के स्थान पर उन्हें सिद्ध करती है।

संसार के सभी महापुरुष, महर्षि, वैज्ञानिक, आविष्कारक, सब अनुमति से संयुक्त थे। महान वीर, क्रांतिक विचार वाले, महामानव, विश्व उद्धारक सब अनुमति वाले हैं। ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, जय-विजय, योग-याग, साधना-उपासना, निर्माण रचना सब अनुमति की महिमा है। अनुमति वालों ने ही संसार की समस्याओं का समाधान किया है और भविष्य में करेंगे।

६. अनुमतिमान एक बार जो निर्णय लेता है, तदानुसार चिन्तन व साधना करता है। निर्णय सोच विचार कर करता है, दृढ़ता व स्थिरता से कार्यान्वयन करता है। बड़ी आपत्तियां, विरोधी बाधायें आने पर भी निर्णय पर आरूढ़ रहता है। पीछे न हटकर बाधाओं से टकराकर उन्हें चूर चूर कर देता है। अनुमतिवान अनुमनन का धनी होता है। अनुमनन=अनुसंकल्प, अनुप्रेरक, संकल्प, दृढ़ ध्रुव संकल्प।

मति, विमति, कुमति, सुमति चारों संस्कार जन्य एवम् संकल्प शून्य होती हैं। अनुमति साधनाजन्य होती हैं। अनुमनन से अनुमतिमान श्रेष्ठातिश्रेष्ठ, कठिनातिकठिन, उदात्तातिउदस्त, दिव्यातिदिव्य साधें सिद्ध करता है, असम्भव को सम्भव कर दिखाता है।

मति, विमति, कुमति व सुमति इन चारों के क्षेत्र सीमित हैं। अनुमति का क्षेत्र सार्वभौम, सर्व व्यापक है। जो निर्णय, कार्य, साधना करता है उसका सर्व से सम्बंध होता है। सर्वहित, सर्वकल्याण, सर्वसेवा, सर्वमंगल सर्वानन्द निहित होता है। उपरोक्त चारों चुनौतियों से कतराती हैं परन्तु अनुमति उन्हें स्वीकार करती है। उनकी चिकित्सा अथवा, समाधान करती है।

७. अनुमति के बारे में वेदमाता कहती है:

अनुमति सर्वमिदं बभूव-अनुमति यह सब हुई है, उसी का चमत्कार, करिश्मा है। अखिल दिव्य इसका खेल है।

८. वेद माता कहती है जो ठहर रहा है और गति कर रहा है, चर अचर जो कुछ, जितना भी जड़ चेतन जगत् है, अनुमति सब को हिला देती है। समस्त पृथ्वी ही नहीं अखिल सृष्टि को हिला देती है। अनुमतिमान जगत् को हिलाने की क्षमता रखती है। जो अनुमति के आश्रय से उत्कट साधना करता है वह पुरुष महिमामय बनकर समस्त विश्व को प्रेरित और प्रभावित करके असंख्य सार्वभौम साधों को सिद्ध कर सकता है। उसके लिये विश्व का आर्यकरण, वैदिकीकरण तथा एकीकरण कोई कठिन कार्य नहीं। आवश्यकता है देवी अनुमति को वरण करके अपने जीवन मंदिर में प्रस्थापित करने की।

९. प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा सम्बोधन करना चाहिये। देवि अनुमते! मैं सदा तेरी सुमति से युक्त रहूं, मैं सदा तेरी उदात्त प्रेरणा से प्रेरित रहूं। तू सदा हमारा अनुमनन करती रहे।

प्रबल और निर्मल इच्छाशक्ति का प्रयोग, सतत अनुमति से ही सब प्रकार का निर्माण और सुसर्जन, उन्नतियां और अभिवृद्धियां सम्भव हैं।

जहां अनुमति वहां विजय महान।

आगे बढ़ना और ऊपर उठना

कुछ लोग ईश्वर आज्ञा और गुरुशिक्षा को सर्वोत्तम साधन, प्रेरणा, मार्गदर्शन, पथ प्रदर्शन मानते है, ऊपर उठने के लिये। और कुछ संकल्प और चिन्तन को भी ऊपर उठने के लिये मार्ग प्रशस्त करने का कारण मानते हैं। वेद में कई मन्त्र हैं सभी बुद्धिकारियों को जो ऊपर उठने की प्रेरणा देते हैं।

आइये इस प्रकार य0 १८/५२ का मन्त्र देखें, मनन करें, निदिद्धयासन करके ईश्वर कृपा के पात्र बनें। यह मन्त्र दो पंखों का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

इमौ ते पक्षांवाजरौ पतित्रिणौ याभ्याꣳरक्षाꣳस्यपहꣳस्यग्ने।
ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्रऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः।।

अग्ने! (ते इमो पक्षौ)	- तेरे यह दो पंख है
(अजरौ पतित्रिणौ)	- अजर और उड़ने वाले
याम्याम् रक्षांसि अप-हंसि)	- जिन से तू राक्षसों को अपहनता है।
(ताम्याम् उ)	- उन दोनों से ही
(सुकृताम् लोकम्)	- सुकृतों के लोकों को (हम) उड़ें
(यत्र प्रथमजाः पुराणाः ऋषयः)	- जहां प्रथम जन्मे और पुराने ऋषि पहुंचे थे।

१. वैदिक अर्थो में अग्नि शब्द का तात्पर्य आगे ले जाने वाला, आगे बढ़ाने वाला, स्वयं आगे बढ़ने की इच्छा वाला तथा अन्यों को ले जाने की कामना वाला है। "अग्नि अग्रणीभवति" इसी अर्थ में अग्नि को सम्बोधन कियां है।

मन्त्र में दो पंखों का उल्लेख है जो अजर हैं और झप्पटे के साथ, बहुत तीव्र गति से उड़ा ले जाने वाले हैं। इन दो पंखों की सहायता से अग्रगामी जन राक्षसों का हनन करता हुआ निर्बाधता के साथ ऊंचा चढ़ सकता है और आगे बढ़ सकता है। इसी प्रकार इन दो पंखों की सहायता से अग्रगामी मनुष्य उड़ कर सुकृतों, सुकर्मो, सुसाधनों के उस लोक में पहुंच सकता है जहां प्रथम जन्मे पुराने ऋषि।

२. पक्ष का रूढ़ अर्थ है पंख जो पक्षी को तीव्र गति से ऊंचा ले जाता है, तीव्र गति से आगे बढ़ाता है। ऊंचा और आगे बढ़ाने वाले पक्ष या पंख हैं उन पंखों का सुप्रयोग करके जो भी ऊंचा चढ़ते हैं वे पक्षी हैं।

इस मन्त्र का पक्षी वह साधनशील मानव है जो ऊंचा चढ़ना और बढ़ना चाहता है। इतना ऊंचा और आगे कि वह सुकृतों के लोक में पहुंच जाये, उस लोक में जहां प्रथम जन्मे पुराने ऋषि पहुंचे।

जहां सुकृत ही सुकृत होते हैं, सुकर्म ही सुकर्म किये जाते हैं, वही सुकृतों का लोक

अगला बिन्दु है ३. TRY TO SLEEP WELL. अच्छी प्रकार कौन सो सकता है? चिन्ताओं में जो पड़ा है, बदला लेने की भावना है, धन अर्जन में ठीक अथवा गलत ढंग से लगा रहता है, वह शांति से कैसे सो सकता है, गोलियां खाकर भी नहीं सो सकता। दूसरी ओर जो प्रात: उठकर कहता है कि आज कितनी गहरी, कमाल की, स्वप्न और चिन्ता रहित नींद आई है, आनंद और प्रसन्नता से मुसकराते हुए अंगडाई लेता है वह नींद ही वास्तविक नींद है। झांकियां देखते हुये कितनी प्रसन्नता होती है। झांकी निर्माता की कलात्मक कृति में भाव विभोर हो उठता है। वैसे ही नींद भी एक झांकी है, यदि मस्ती से नींद आ जाती है तो यह सुषुप्ती अवस्था कहलाती है। भेदभाव, ईर्ष्या, द्वेष से अलग होकर जो दत्त चित्त होकर प्रभु का नाम लेकर सोयेगा, वह गहरी नींद सोयेगा, परन्तु ऐसी निद्रा के लिये बुरे, दुरित भावों को हटाना होगा, प्रभु के मार्ग का सम्बल और अहंकार रहित पाथेय वाला व्यक्ति यह मानकर चलता है कि यह सब कुछ उसी का दिया है, भीतर उसके इदन्नमम् का भाव होता है। उसके दिन सुदिन हो जाते हैं, प्रात: से मध्याह्न, मध्याह्न से रात और इससे अगला दिन उत्तरोत्तर सुदिन होता है। दुरित भाव बहुत पीछे छूट जाते हैं।

४. ऊपर की कहावत में अगला बिन्दु है see the funny sides of life ऐसा व्यक्ति आने वाले कष्टों से, विपत्तियों से न तो घबराता है और न ही पलायन करता-है, अपितु मुस्कराता हुआ उनसे झूझता है। जीवन को मनोरंजन में बदलता है, जीवन को आगे ले जाने के लिये ढाढ़स, संयम और दृढ़ता का पल्लू पकड़ता है। गर्मी में, सर्दी में, वर्षा में भी आनन्दित रहता है। भीतर समभाव रखता है। हर परिस्थिति में घबराता नहीं है अपितु अपने जीवन के संगीतमय मनोरंजन के पक्ष का अनुसरण करता है। जीवन को विनोदी बनाने का प्रयास करना होगा, तभी संतुलन रह पायेगा। न घबरा कर कठिनाइयों का हंसते-हंसते सामना करना होगा। प्रभु की हर बात में अच्छाई मिलती है, उसे आत्मसात करना होगा। प्रभु की हर वस्तु अथवा बात में विशेषता भरी है।

५. अब उपरोक्त के आधार पर परिणाम क्या होगा? (Health & happiness will be yours) स्वास्थ्य और नैसर्गिक प्रसन्नता आपकी होगी। जीवन में दोनों का होना आवश्यक है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिये ढेरों औषधियों का अम्बार है। नित नई खोजें हो रही है। अब तो तपेदिक (टी.बी.) भी लाइलाज नहीं रही। इसकी दवा खूब मिलती है। परन्तु मानसिक स्वास्थ्य की कोई बाह्य औषधि नहीं है। **''कामाय परम विदेहशय''** अर्थात् विकारों के रोकने के लिये वेद में शांति और सोमपान परम औषधि है। इसके पीने से हम मानसिक दृष्टि से सशक्त हो पायेंगे। मनोबल बनेगा। औषधि ऐसी जिसके लेने का कोई समय नहीं है। ब्रह्म पीयूष ही वह औषधि है। मन स्वस्थ तो सब कुछ स्वस्थ, चाहे वह शारीरिक है अथवा मानसिक व्याधि क्यों न हो। आत्मबल (will power) के लिये प्रभु के प्रेम का पान करो। अकेले उसके ध्यान करने से शांति मिलती है। उसके साथ वार्तालाप करने से नैसर्गिक प्रसन्नता, चिरंतन शांति और आनन्द मिलता है प्रभु को सदैव समीप अथवा हृदय में रखें तो ऐसा ही परिणाम मिलेगा। वह केवल सखा ही नहीं परम सखा है, उसके सखित्व से जीवन सुन्दर बन जायेगा। हम प्रकृष्ट संतान बनें, प्रभो हमें शक्ति दे कि उपरोक्त वर्णन के अनुसार हम अपने जीवन को धारण करें।

विशाल साधनामय जीवन

बल अर्जित करें किन्तु स्वार्थी न बनें। तत्पश्चात् हम उदार हृदय बनें। अपनी कृपणता को छोड़कर अपनी उदारता और विशालता से उसका वर्षण भी करें। आज की चर्चा में वेद ज्ञान पर विचार करेंगे। इसके लिये आइये! एक शिक्षाप्रद कथानक सुनें और विचार करें।

एक बरगद का पुराना पेड़ था, उसकी शाखायें दूर दूर तक फैल रही थीं, जो उसके आयुष्य को प्रकट कर रही थीं। परन्तु एक बड़ी विडम्बना थी। उस पेड़ के एक छोर पर एक मनोरम सरोवर था जिसके किनारे पर बड़े सौरम्य रंग बिरंगे सुगन्ध से भरे फूल थे। सौन्दर्य की छटा थीं जिनकी मादक बयार से इठलाते उस सरोवर की सुन्दरता को वह फूल प्रदर्शित कर रहे थे, परन्तु उस पेड़ के दूसरे छोर पर एक मरघट था जिसमें अग्नि में स्नान करते शवों का एवम् करुण क्रन्दन दिखाई और सुनाई पड़ता था। इस ओर तो बाल, युवा, वृद्ध आते खेलते, कूदते, हंसते, किलकारियों से वातावरण गूंज उठता था, परन्तु दूसरी ओर जलते शव, रुदन, चीत्कार का वातावरण बरगद को दृष्टिगत होता था। लेकिन एक तपस्वी की भांति निस्पृह भाव से खड़ा होकर इन दोनों दृश्यों का दर्शन करता था,

एक दिन एक युवक बटोही घूमते घामते थका मांदा अकस्मात् उस पेड़ के नीचे आकर बैठ गया और सुस्ताने लगा। सघन छाया में धीमी धीमी चलती समीर से पत्तों की सरसराहट के संगीत का आनन्द लेने लगा। इस काल में उसने एक ओर सरोवर देखा जिसके समीप की फुलवारी में बच्चों की किलकारियां सुनने को मिलीं और पेड़ के दूसरी और करुण, क्रन्दन, रुदन रोदन सुनने को मिला। बटोही विचारों में डूब गया-सोचने लगा कि यह जीवन क्या है? इसमें वास्तविकता क्या है कि इसमें रमना चाहिये अथवा विरक्त हो जाना चाहिये? क्या यह अमृत है जिसका पान करना चाहिये अथवा विष है जिस का परित्याग होना चाहिये? बटोही जितना-जितना विचार करता ज़ाता उतना-उतना और उलझता जाता था। उसका मस्तिष्क किसी समाधान की ओर नहीं ले जा रहा था। उसकी व्यग्र दशा हो गई। वह चाहता था कि उस सम्पन्नता और विपन्नता की विडम्बना को चीर कर किसी समाधान को पहुंचा जाये। वह दोनों दिशाओं में जाकर भटक गया। फिर पेड़ की छाया में विश्राम करने लगा। थका था। ऊपर से पेड़ से फल गिरा, बटोरा, खाया, भूख लगी ही थी। तृप्ति हुई। सोचने लगा किस देवता ने मेरी दशा पर कृपा कर मेरी आवश्यकता की पूर्ति की। सोचा पेड़ पर अवश्य कोई देवता बैठा है जिसने मेरी दशा पर दया व कृपा की है। पेड़ को देखा। पके फल दिखायी दिये। चारों ओर देखा, कोई नहीं था ऊपर पत्तों का झुरमुट। समझाने के लिये यह एक कथानक है कि बरगद की आत्मा ने जो वर्षों से इन दृश्यों को देख रही थी, वह बोली-बटोही! परेशान मत होओ। यह जीवन के दो सत्य हैं, जहां सम्पन्नता है वहां विपन्नता भी है, जहां मधुरता है वहा कष्ट भी है। मुझे देखो, मैं वर्षों

से यह सब देख रहा हूँ किन्तु न इनसे भावुक होता हूँ और न कभी प्रभावित होता हूँ। यदि मैं प्रभावित हो जाता तो कभी की यह मेरी टहनियां सूख जातीं, दिखायी न देतीं, इतना बड़ा बरगद का पेड़ न दिखायी देता। परन्तु मैं अपने कर्त्तव्य में निरंतर हूँ। सृष्टि को छाया और फल देता रहता हूँ। मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। युवक! तुम भी भावुक न बनो और कर्त्तव्य में निरत और मग्न रहो। कर्त्तव्य करना सात्विक भाव नहीं था? वास्तव में पेड़ क्या बोलता, बटोही सो नहीं रहा था, इस समस्या का समाधान उसकी स्वयं की अन्तर्ज्योति कर रही थी जो अघ्न्या थी। अपने कर्त्तव्यों को ढूंढो तो वास्तविकता दिखायी पड़ती है, ज्ञान प्राप्त होता है। जब व्यक्ति ईश्वरीय आज्ञा एवम् वेदों द्वारा प्रदत्त ज्ञान में दिये गये निर्देशों का पालन करता है, वेद माता द्वारा बताए मार्ग पर चलता है, अपने को अनुकूल करता हुआ ईश्वरीय गुणों को धारण कर मनुर्भव के सूत्र में रम जाता है तो सच्चा मानव बन जाता है।

यजुर्वेद के निम्नांकित मन्त्र के अनुसार यह बात सत्य है कि मानव के जीवन की उन्नति की कोई सीमा नहीं है। जीवन एक ऐसी निरन्तर यात्रा है जिसमें हर पल हर क्षण कुछ न कुछ देखते हैं। मृत्यु पर्यन्त सीखते हैं। यह एक ऐसा विद्यालय है जिसमें पग-पग पर ज्ञान भी प्राप्त होता है, और पग पग पर परीक्षा भी होती है। एक कवि ने ठीक कहा है।

मानव तू सम्भल-सम्भल कर चल
यह विश्व परीक्षालय महान।
पग-पग पर जांच रहा तव बल
मानव तू सम्भल-सम्भल कर चल।
अनजाने से विस्तृत पथ पर
ममता माया का जाल बिछा।
तृष्णा रोयेगी लिपट तुम्हें
तुम्हें देगी वासना डिगा।
फंसना न कहीं इस उलझन में
पग-पग पर यहां अरे दल-दल।

आइये यजुर्वेद के इस मन्त्र पर विचार करें:

ओ एधोऽस्योधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि मयि धेहि। समाववर्ति पृथ्वी समुषाः समुसूर्यः। समु विश्वमिंद जगत् वैश्वानरज्योतिर्भूयासम् विभून, कामान् व्यश्नवै भूः स्वाहा। (य २०.२३ ३८.२५)

तू (**एधः असि**) ज्वलनशील है, हम (**एधिषीमहि**) प्रज्वलित हो जाएं। तू (**समित असि तेजोऽसि**) तू दीप्ति है, तेज है (मयि तेजःदेहि) मुझ में तेज प्रदान कर (**समाववर्ती पृथ्वी**) पृथ्वी तू बराबर वर्त रही है। पृथ्वी चहुँ ओर अपने कर्त्तव्य का पालन कर रही है। तपस्या का जीवन व्यतीत करते हुए हमारे लिये वरदान सिद्ध

हो रही है। **(समुषाः समुसूर्यः समु विश्वमिदं जगत्)** प्रातःकाल जो सेवनकाल है, उषा भी बराबर वर्त रही है। ऐसी रश्मियां इससे विकसित विकीर्ण हो रही हैं, इसलिये सम्यक रूप से वर्त रही है। यह भेषज का कार्य करती है, सबको रोगों से बचाती है। **(समुसूर्यः समु विश्वमिदम् जगत्)** सूर्य भी अपने कार्य को नियमित रूप से कर रहा है। परमात्मा से यह सब प्राप्त करते हैं और जगति में हम सब को बांट देते हैं। यह विश्व भी स्वतः कार्य करता है। किसी को आदेश नहीं मिलता। **(वैश्वानर ज्योतिर्भूयासम्)** हे प्रभु! मैं भी वैश्वानर ज्योति हो जाऊँ **(विभून कामान् व्यश्नवे भूः स्वाहा)** मेरी कामनायें शिव संकल्प वाली हों। श्रेष्ठ कामनायें हों। कामनायें उदार हों। मैं उत्सर्ग के लिये तैयार रहूं। कोई रुकावट न आये।

इस मन्त्र में पांच मुख्य बातों का समन्वय है स्तुति-**प्रार्थना-कामना, प्रेरणा तथा साधना।** स्तुति और प्रार्थना एक दूसरे के पूरक हैं। इनका वैज्ञानिक सम्बन्ध है। अर्थात् स्तुति के अनुरूप ही प्रार्थना होनी चाहिये, यह उपयुक्त नहीं है कि किसी ध नवान के पास ज्ञानामृत की प्रार्थना करो और किसी साधु से धन मांगो।

प्रभु के गुणों की स्तुति हृदय से अनुप्राणित होकर जब हमारा हृदय भावना कलश के सोम कणों से आप्लावित हो जाता है तो उस समय जब हृदय से प्रभु की स्तुति करते हैं तो वह स्तुति वास्तविक स्तुति होती है। प्रार्थना अनुकूल होनी चाहिये। तब प्रभु अपने गुणों का हमारे में समावेश करते है। हमारी प्रार्थना तब स्वीकार होती है। चापलूसी वाली स्तुति कभी न करें।

मन से की गई प्रार्थना का परिणाम यह होगा के भीतर के राजसिक और तामसिक भाव हट जायेंगे। तब यह जीवन देव की नगरी बनेगा। हमें प्रकाश मिलेगा। समिधा को अग्नि भी अपना रूप देती है। इसी प्रकार भगवान् भी ऐसा करता है। हमें ही नहीं परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व तक प्रेरणा देगा। हमारी कामनायें परिवर्त्तित हो जायें। प्रभो! हमें अच्छे विचार और ज्ञान दो तो इन कामनाओं का शुद्धिकरण हो जायेगा।

वेद ने फिर कहा है-**त्वम् हि न पिता वसो त्वम् माता शतक्रतो बभूविथ**-मां अनेकों कार्य करती है। शत कार्य अर्थात् अनेक कार्य करती है। परमात्मा समिध है प्रज्वलन करने वाला है। मानव प्रज्वलित हो जायेगा। तब हम साधना में जुटकर तेज को प्राप्त करते हैं।

मनुष्य अपने भीतर पात्रता उत्पन्न करे तो तेजस्वी बनेगा। व्यक्तित्व को प्रेरणा किसने दी यह मन्त्र आदेश देता है कि सूर्य चन्द्रमा के समान वर्षणशील बनो। सागर के समान वर्षणशील बनो। व्यक्तित्व उत्थान के लिये प्रेरणा प्राप्त करो। इसलिये कहा है समर्पित पृथ्वी किस प्रकार प्रेरणा दे रही है। सम्यक् रूप से बरत रही है। जितना गहरा खोदे उतनी अच्छी फसल होती है और नीचे जाएं तो खनिज पदार्थ मिलते हैं, तेल मिलता है। रत्न देती है। मानव मात्र की आवश्यकतायें पूरी करती है। पृथिवी ने

कभी भी उलाहना नहीं दिया। इसी प्रकार हम सब प्रजा का पालन करना सीखें। जब मैं ऋताचारी, शाश्वत सत्याचारी बनूँगा, सत्य को धारण करूँगा, तब मैं भी पृथिवी की तरह भार ढोने वाला बनूँगा। जैसे पृथ्वी, धरती माता गुणों व सम्पदाओं से सम्पन्न है, वैसे मैं भी परिपूर्ण हो जाऊँ। परमात्मा कहते हैं-हे वत्स! जब पुरुषार्थ करोगे तब सारी सम्पदायें जो पहले से ही तुम्हारे लिये तैयार हैं, प्राप्त हो जायेंगी।

पृथिवी की तरह हम भी सहनशील बनें। हम गुरु गुरुतर गुरुतम उत्तरदायित्वों का वहन करते हुए जब प्रजाओं के सम्वर्द्धन में भाग लेंगे तो यह वास्तव में सच्ची सेवा होगी। यही प्रभु की सच्ची भक्ति होगी। सेवा और सज्जनता का मेल होता है।

एक भक्त अब्दुल बिन कासिम प्रति वर्ष हज के लिये मक्का मदीना जाया करते थे। इस बार दीनारों और खाने-पीने की वस्तुएं थैलों में भरकर मक्का जा रहे थे, तो रास्ते में एक प्रौढ़ महिला गिर गई। पूछा-क्या कष्ट है तुम्हें? उत्तर मिला कि वह तीन दिन से भूखी है, कुछ भी खाने को नहीं मिला। फिर पूछा तुम्हारे घर में कौन-कौन है और क्या कष्ट है, तो उत्तर मिला कि मेहनत मजदूरी करके तीन बच्चों को पालती हूँ। भक्त ने उसे खाना दिया। या तो मैं मक्का पहुंचू या इस देवी की सहायता करूं? सारे दीनारों की थैली उसे देते हुए कहा कि जाओ और इनसे कोई काम करो। स्वावलम्बी बनो और बच्चों को पालो, और स्वयं घर लौट आया। साथियों ने पूछा कि मक्का के दर्शन कर आये, आप तो सब से आगे थे? परन्तु उसने तो सेवा करके सच्चा मार्ग लिया। वही मक्का की ज़ियारत समझी। ऐसे व्यक्ति की प्रभु कामना पूरी करते हैं। व्यक्तित्व के निर्माण द्वारा समाज का निर्माण ही एक दिव्य संदेश है।

मानव की तीन कोटियां

आइये! ऋग्वेद के निम्नांकित मंत्र की छाया का रसास्वादन करें।

मन्त्रः अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः। मज्जन्त्यविचेतसः (ऋ ९.६४.२१.१)

मानव की तीन कोटियां होती हैं। प्रथम कोटि के वह व्यक्ति होते हैं जिन्हें वेना कहा गया है, अर्थात् आप्त पुरुष, उत्तम पुरुष; जिन्होंने अपनी कामनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है। उन्हें 'वेना' कहा गया है। जीवन के प्रथम सवन बाल्यकाल से ही प्रभु के आदेश का पालन करते हैं। प्रभु में मगन होकर साधनामय जीवन व्यतीत करते हैं। प्रभु की स्तुति, प्रार्थना व उपासना में निमग्न रहते हैं। प्रेरणा प्राप्त कर उत्तम साधना करते हैं। ब्रह्म में लीन होकर भी कर्त्तव्यों का पालन करते रहते हैं। अपनी सुगन्धि को फैलाते हुये जीवन व्यतीत करते हैं। गौरवमय कार्य करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं।

दूसरी कोटि के वे लोग **इयक्षन्ति प्रचेतसः** विवेकी पुरुष हैं, वे भी जीवन में उठना चाहते हैं। गृहस्थ से प्रभु पथ पर तेज़ी से आगे बढ़ते हैं। ऐसे लोग सांसारिक मोह माया में रोक भी लिये जायें तो भी वे उन पर विजय प्राप्त करके संसार से प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान करते हैं। उच्च गति को प्राप्त करते हैं। यह मध्यम श्रेणी के होते हैं।

तीसरी कोटि के वे लोग हैं जो **अविचेतसः** अर्थात् अविवेकी हैं, वे माया में लीन रहते हैं और अन्त समय में डूब जाते हैं। तीसरे सवन में भी सांसारिक माया जाल में फंसे रहते

हैं। ऊंचे नहीं उठते। बाधाओं में फंस जाते हैं। ऐसे लोग रोते हुये आते हैं रोते हुए जाते हैं। हाय-हाय करते रहते हैं। अन्त में मृत्यु सागर में विलीन हो जाते हैं। कबीर ने कहा है-

कबीरा जब पैदा हुए जग हंसा हम रोये।
ऐसी करनी कर चलो हम हंसे जग रोये।।

हम अच्छे प्रकार अविवेक को विवेक में परिणत करते हुये आरोहण करें।

''उद्यानम् हि पुरुषम् नावयानम्'' व्यक्ति का कर्त्तव्य है उन्नति करना। हम प्रचेतसा बनेंगे तो अन्तिम समय में हम रोते और कल्पते हुए नहीं जायेंगे।

प्रभु हमें शक्ति दें कि हम केवल वैदिक ऋचाओं का पाठन ही न करें अपितु मनन करते हुए आगे बढ़ें। आइये इस भावना से मिलते-जुलते मन्त्र पर दृष्टि डाले:

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।
समाववर्ति पृथिवी समुषाः समुसूर्यः। समु विश्वमिदं जगत्।
वैश्वानरज्योतिर्भूयासम् विभून् कामान् व्यश्नवै भूः स्वाहा।।ऋ०२०-२३।।

हे परमात्मा! तू प्रज्वलनशील है। हमें भी प्रज्वलनशील कर। मन्त्र में **स्तुति, प्रार्थना, कामना, प्रेरणा, और साधन** यह पांच तत्वों का समन्वय है ऐसा बताया था। पृथिवी, उषा, सूर्य के बारे में चर्चा की थी। सूर्य उदीयमान होकर प्रेरणा देता है कि ऐ मानव! तू अपनी जगह पर स्थिर रहो। आचरण श्रेष्ठ हो, मर्यादाओं का हमारा आवृत्त हो। यह आवर्त प्रकृष्ट रहे, यह सूर्य प्रेरणा देता है।

तभी वेदमाता कहती है:

पश्येम् सूर्यम् उच्चरतम्।

अर्थात् तुम उदित हुये सूर्य को देखो। उसके तुल्य उदीयमान रहो। उन्नति करो। ज्ञान के प्रकाश को विकीर्ण करो और सारे संसार को भी पूरित करो।

इसके बाद है **''इदम् विश्वम् जगत्''** यह सारा जगत् ठाठ के साथ संचरण कर रहा है। यह अनन्त असीम, हिरण्यगर्भ पूर्ण न्याय, नियम के साथ चल रहा है। कहीं अव्यवस्था नहीं, कहीं अनियमन नहीं, कहीं हड़ताल और धोखा नहीं, कहीं मारधाड़, आतंक नहीं, कहीं प्रमाद नहीं। पुरुषार्थ ही पुरुषार्थ है। जागरूकता के कारण यह सृष्टि जागृत है। यह परमात्मा से प्रेरित होकर स्वयम् अपनी व्यवस्था में रत है, कार्य अनुशासन में रत है। यदि हम प्रेरणा प्राप्त करके पात्रता अपने में उत्पन्न कर लें तो यह सारा जगत् हमें प्रेरणा देता है। जगत् तो जगत्, छोटी से छोटी चीज़ भी हमें प्रेरित करती है। याद होगा जब हम छोटे थे तो गाया करते थे:

फूलों से तुम हंसना सीखो, भंवरो से नित गाना
धुंए से तुम सारे सीखो, ऊंचे ऊंचे चढना।
सुई और धागे से सीखो, बिछड़ों को गले लगाना।

प्रेरक तो बहुत हैं केवल प्रेरणा लेने की हिम्मत चाहिये। हम प्रेरणा लेना सीखें, तो जीवन को हम उन्नत बना सकते हैं, तो निश्चित रूप से उषा, सूर्य, पृथिवी तीनों सम्यक रूप से वर्त रहे हैं।

परमात्मा एक महान शक्ति है जो कण-कण में व्याप्त है। जिसकी आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। जिसके नियमन के अनुसार यह संसार ठीक प्रकार से चल रहा है। हमें दुःख होता है कि बार-बार कहना पड़ता है, व्यास पीठ से घोषणायें करनीं पड़ती

हैं, माता जी को कहना पड़ता है कि शांत हो जाइये, मौन का पालन कीजिये, सादगी व साधना करने आये हैं, वह करो और अपने को सांसारिक अनावश्यक वस्तुओं से अपने को लिप्त न करें, उस महादेव, महानसत्ता को घोषणायें नहीं करनी पड़तीं। वह तो मात्र प्रेरणा करता है। यह भूमण्डल एवम् आकाशीय नक्षत्र स्वतः ही उस से प्रेरित होकर हम को भी प्रेरित कर रहे हैं। वह परमात्मा सब नक्षत्रों, ग्रहों, उपग्रहों को आलोकित करता है, संचालित भी करता है, प्रेरित करता है। यह सत्ता प्रभु की वैश्वानर ज्योति है, यह ज्योति सबका नयन-सुनयन कर रही है। एक कवि ने क्या खूब कहा है:

बनाया है औरों को रहबर किसी को
भटकता है कोई कुए गुमरही में।

वह कभी नहीं भटकाता। स्वयं हम ही अन्धकार में भटक रहे हैं। हम रहबर बनने की योग्यता नहीं रखते। यह योग्यता अर्जित करके हमारे भीतर भी वैश्वानर के गुण आ जायेंगे। हम भी नयन और सुनयन कर सकेंगे। वही पिता हमारा त्राण कर सकता है। वह ज्योतिष्मान भी है। इस ज्योति को चारों ओर बिखेर रहा है। लोगों को सचेत भी कर रहा है। सचेत होने वाले सचेत हो जाते हैं परन्तु हम जैसे प्रमादी और आलसी बिस्तर में पड़े-पड़े उस प्रचेतना को प्राप्त नहीं करते। अपने जीवन को खाने-पीने और मौज उड़ाने में लगाये रखते हैं (eat drink & be merry)। इसी उद्देश्य को सामने रखते हुये वही बात **मन्जन्ति अविचेतसः** जैसी हो जाती है।

ईश्वर उपासना क्यों और कैसे?

परमात्मा की उपासना की क्या आवश्यकता है? उसकी उपासना क्यों करनी चाहिए? परमात्मा प्रदत्त वेद के मन्त्र में इस प्रश्न का उत्तर उल्लेखनीय है। यह मन्त्र इस प्रकार है-

ओं उत स्वया तन्वा३सं वदे तत्कदान्वं१तर्वरुणे मुवानि।
किं मे हव्य महृणानो जुषेत कदा मृड़ीकं सुमना अभिख्यम्।। (ऋ० ७-८६-२)

(उत स्वया तन्वा संवदे) हां! मैं अपनी देह से संवाद करता हूं, पूछता हूं **(तत्-कदा-नु-वरुणे अन्तःभुवानि)** तो फिर कब वरने योग्य एवं वरने वाले परमात्मा में अपने को विराजमान हुआ देखूं? **(मे किं हव्यम्)** किस भेंट को **(अहृणान्-जुषेत)** स्वागत करता हुआ स्वीकार करे, **(कदा मृडीकं सुमनाः अभिरण्यम्)** कब मैं सुख स्वरूप, आनन्द रूप परमात्मा को पवित्र मन वाला और निरुद्ध मन वाला होकर देख सकूं?

इस मन्त्र में उपासक के मन की तड़प उस वरणीय परमात्मा के प्रति दर्शायी है अर्थात् उस परब्रह्म की प्राप्ति कैसे होगी? इस मन्त्र में स्पष्ट है कि बिना उपासना के वह प्राप्त नहीं होता।

उपासना=उप+आसन=निकट बैठना=तादात्म्य, प्राप्त करने का माध्यम तो शरीर है।

शरीर में चार वस्तुएं हैं:-

१. इन्द्रियां अथवा स्थूल शरीर
२. मन-संकल्प विकल्प वाला

३. बुद्धि-सद् विवेक
४. आत्मा

आत्मा-अनन्त काल से आनन्द की खोज में विशाल यात्रा पर है। चाहत तो आनन्द की है, पर कभी-कभी धन-सम्पत्ति, परिवार, अधिकार, प्रतिष्ठा, मृग-तृष्णा बनकर बाधक बनती है। यह प्राकृतिक वस्तुयें चंचल व परिवर्तनशील हैं और दुःख सागर में ढकेल देती हैं। सुख की कामना करती आत्मा अनायास दुःख, क्लेश व संकटों से घिर जाती है। उद्देश्य तो अच्छा है पर साधन उचित न होने से गन्तव्य को प्राप्त नहीं कर सकती। जैसे प्यासे को कुएं के पास जाना चाहिए, वैसे आनन्द अभिलाषी के लिये जीवात्मा को आनन्द के स्रोत के पास जाना चाहिए। जहां आनन्द होगा वहीं तो मिलेगा। भौतिक पदार्थ तो सुख-दुःख निहित हैं। इनका सुख तो क्षणिक और दुःख का परिणाम भी होगा। आनन्द के लिये आनन्द के भण्डार सच्चिदानन्द स्वरूप परम पिता परमात्मा की ही शरण में जाना होगा। अपने क्रिया-कलापों को आध्यात्म उन्मुख बनाना होगा। अर्थात् अर्थ और काम से पूर्व धर्म को स्थापित करना होगा।

अर्थ भी धर्मपूर्वक कमायें, काम भी धर्मपूर्वक हो, तभी आनन्द प्राप्ति का मार्ग सुलभ होगा। दूसरे शब्दों में आत्मा का भोजन, आनन्द स्वरूप परमात्मा ही है। उपनिषद्कार भी पुष्टि करते हैं-''अहम् अन्नम् अहम् अन्नम् अहम् अन्नम्'' अर्थात परमात्मा कहते हैं कि ''मैं ही अन्न हूं, जीवात्मा का अन्न मैं ही हूं अर्थात् मुक्तों के द्वारा अन्नरूप में खाया जाता हूं।''

हम छोटे-छोटे कार्यों के लिये सबको धन्यवाद देते हैं। हम सांसारिक लोगों का धन्यवाद का ढंग बड़ा विचित्र है। एक नेत्र विशेषज्ञ का उदाहरण लें जिसने फीस व दवा के दाम ले लिये-उसे धन्यवाद करते हैं, पर उस पर ब्रह्म का धन्यवाद नहीं करते जिसने अमूल्य दो नेत्र दिये हैं। यह न होते तो डाक्टर व उसके द्वारा दी गई ऐनक बेकार।

प्रभु ने आंख, सुन्दर शरीर, वैभव, प्रतिष्ठा, परिवार, अमूल्य प्राण-क्या नहीं दिया। प्राण के बिना मृत! उसका कोटिशः नमन व धन्यवाद करना चाहिये जो उपासना के बिना सम्भव नहीं। कृतज्ञता और धन्यवाद के लिये उपासना आवश्यक है।

कैसे? कुछ लोगों का विचार है कि उपासना नहीं चाहिये, केवल कर्तव्य पालन ही पर्याप्त है। कर्तव्य पालन तो करना ही चाहिए।

उदाहरण-एक चित्रकार है-चित्र देखने पर कमियों का पता लगता है। इसी प्रकार कार्यों में लीन व्यक्ति संसार में जो चित्र बना रहा है, उसकी कमियां चित्तवन से पता लगेंगी। प्रातः सायं चितवन के क्षेत्र ही कमियों का पता लगाते हैं। यह आत्म-चिंतन ही प्रभु की उपासना है।

आत्मा आनन्द की प्राप्ति के लिये नाना योनियां भोगता हुआ मानव का जन्म लेता है, जो सर्वश्रेष्ठ योनि है। शेष सभी योनियां भोग योनियां हैं। मानव योनि में ही बुद्धि रूपी प्रकाश के दर्शन होते हैं। मानव तन ही परमात्मा के दरबार का द्वार है। यदि मानव तन पाकर भी पशुओं की तरह जीवन व्यतीत करें तो हम बड़े अभागे हैं। इसीलिए उपासक उक्त मंत्र में अपनी देह से ही प्रश्न करता है ''कब मैं वरने योग्य

वरणीय परमात्मा के भीतर अपने को विराजमान देखूंगा?''

यह दर्शन चर्म चक्षुओं से नहीं होंगे। हम इन चक्षुओं पर आश्रित हो जाते हैं-यही हमारी मूर्खता है।

कठोपनिषद् में कहा है कि-आत्मा का रूप दृष्टि में नहीं ठहरता। वह इन्द्रियों का विषय नहीं है, हो भी कैसे? उसकी कोई प्रतिमा नहीं है। वेद कहता है, ''न तस्य प्रतिमा अस्ति।'' यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में स्पष्ट कहा है कि वह प्रभु अकायम्-शरीर से रहित, अव्रणम्-घावों से रहित, अस्नाविरम्-नस-नाड़ियों से रहित फिर आंखे उसे कैसे देखें? इस श्लोक या मन्त्र में ही कहा है, वह विकल्प शून्या बुद्धि से, मनन रूप यथार्थ दर्शन से प्रकाशित हुआ परमात्मा ही जाना जा सकता है, तो उसे कौन देखता है?

वह प्रभु सूक्ष्मदर्शी पुरुषों द्वारा अपनी तीव्र व सूक्ष्म बुद्धि से ही देखा जा सकता है। भौतिक आंखे उसे नहीं देख सकतीं। सूर्य चन्द्रमा, तारागण तो उसके प्रकाश से ही प्रकाशित हैं।

विकल्पशून्य, सूक्ष्म, तीव्र और पवित्र बुद्धि द्वारा अनुभव किया जाता है। यह बुद्धि कैसे प्राप्त हो? प्रिय वस्तु की भेंट उस प्रभु को देनी होगी।

देह से इसीलिये पूछता है-वह प्रिय वस्तु क्या होगी, जिसे प्रभु स्वीकार करते हैं? वह स्वामी है, सारा संसार उसका है। उसे क्या चाहिए-कुछ नहीं।

हां उसे दिया जा सकता है, मन पापी न हो, वासना में लिप्त न हो। उसमें ओ३म् नाम बसा लूं। इसी पवित्र नाम का स्मरण करूं, तभी वह मेरी भेंट स्वीकार कर हृदयरूपी आसन पर विराजमान होगा। निम्नांकित दृष्टान्त इस रहस्य को और अच्छे ढंग से उद्घाटन करता है:

एक साधु रोज़ भिक्षाटन के लिये जाया करता था। एक दिन एक माता ने कहा-साधुजी! आप तो साधु हैं, खूब साधना की है आपने। कृपा करके मुझे प्रभु दर्शन का अवसर प्रदान करायें। साधु परेशान। कह तो दिया, मैं प्रयास करूंगा। परन्तु सोच में पड़ गये, कह दिया अगले दिन प्रभु के दर्शन होंगे। महिला ने भोजन व भिक्षा के लिये आमंत्रित किया। साधु वापिस आये तो चिन्ता में डूबे, सोच रहे थे कि मैं ईश्वर के कैसे दर्शन क़राऊँ? सो भी नहीं पाये। अगला दिन हुआ-चल पड़े, सोच ही रहे थे कि रास्ते में गोबर दिखायी पड़ा। तुरन्त समस्या का निदान सूझ गया। अपने कमण्डल को गोबर से भर दिया। पहुंच गये महिला के घर, भिक्षा मांगी। देवी आई, और कहा-आईये स्वामी जी! भोजन तैयार है। साधु ने कहा-देवी साधु घर के भीतर नहीं जाता। जो तुमने देना हो, यहीं ले आओ। महिला साफ सुथरी थाली में भोजन ले आई। ''डाल दो इस कमण्डल में।'' साधु जी! इस में तो गोबर भरा है, इसमें साफ सुथरे भोजन को कैसे डालूं? देवी ने कमण्डल को साफ किया और भोजन भर दिया। साधु हंसते हुए चलने लगे। महिला ने तुरनत कहा-''स्वामी जी! परमात्मा के दर्शन तो कराइये।''

साधु बोले-''करा तो दिये। देखो कमण्डल को जैसे साफ किया तब भोजन डाला। इसी प्रकार जब मन, बुद्धि जिनमें मल भरा है, भुस भरा है, उसमें परमात्मा कैसे दर्शन देंगे? पहले मन व बुद्धि से मल और भुस को साफ़ करो, प्रभु तभी दर्शन

देंगे, महिला बात समझ गई। साधु मुस्कराते हुए चले गये। माता को समाधान मिल गया। अर्थात् प्रभु के पवित्र मन की भेंट देकर ही दर्शन हो सकते हैं।

अत: मन्त्र में कहा है-"**कदा मृडीकं सुमना अभिख्यम्**" अर्थात् कब आनन्दस्वरूप भगवान् को सुमना पवित्र मन-निरुद्ध मन वाला होकर देख सकूंगा?

प्रभु के दर्शन सुमन ही करवा सकता है। ऐसे मन से ही प्रभु की आराधना हो सकती है। नवयुवक तो वृद्धावस्था की बात करते हैं। बुढ़ापे में क्या रोगों का सदन प्रभु को अर्पित करेंगे। जवानी तो विषय विकारों को देंगे, बुढ़ापे में जीर्ण शरीर कष्टमय देह में स्वस्थ और सुमन कैसे रहेगा? सुमन भेंट करने के लिये स्वस्थ शरीर आवश्यक है। निरुद्ध मन ही पवित्र और ऋतम्भरा बुद्धि को साधन प्रदान करता है। इसी बुद्धि से हम अपने जीवन के उद्देश्य को पा सकेंगे।

अत: हे मेरी देह! तू बता कि कब मैं उस वरुण भगवान् के अन्दर अपने आपको अवस्थित देखूंगा? वह सुन्दर घड़ी कब मुझको प्राप्त होगी कि मेरी सुन्दर भेंट को वह कमनीय भगवान् स्वीकार करेंगे? तू ऐसा बनकर शीघ्र ही मेरे लिये सौभाग्यशाली दिन ले आ।

द्वादश मार्ग

व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के उत्थान हेतु वेद ने सुदृढ़ मार्ग प्रशस्त किये हैं। आइये, उनको जीवन में ढाल कर अपने व्यक्तित्व को उच्चतम गति प्रदान करें।

ओ३म्

तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणा अशृथिता अमृत्यवा।
अनातुरा अजरा स्थामविष्णवः सुपीवसो अतृषिता अतृष्णजः॥

ऋ० १०/९४/११

हे अद्रयो!

१. अद्रिः:-पर्वत, मेघ जो उच्च अचल/वर्षणशील सेचक हैं: दोनों ही उदार हैं। पर्वत ऊंचा व अचल है। नीचता, संकोच, विषमता, आदि से उठकर पर्वतीय ऊंचाई का सम्पादन करो, निश्चल बनो। पर्वत धूल रहित, शुद्ध, शीतल, शांत होता है। यह गुण अर्जित करो।

(i) अद्रि अर्थात् मेघ। सेचक, वसुन्धरा को हराभरा तथा नदी जलाशयों को पूरता है। किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखता। यह गुण सबके द्वारा अनुकरणीय है।

२. तृदिला:-भेदन शीलता की क्षमता से संयुक्त बनो। किसका भेदन? दुःख, दुरित, शंका, संशय, विघ्न, बाधा, पाप, शत्रु, नास्तिकता अधार्मिकता का भेदन करो। युद्ध में शत्रु पंक्ति का भेदन करके विजय वरण करने वाले वीर बनो।

३. अतृदिलासा:-तात्पर्य है 'अभेद्य' बनो। दुःख, दुरित, सन्देह, संशय, विघ्न, बाधा, पाप, शत्रु, नास्तिकता, अधार्मिकता आदि आपको छू न सकें इनके लिये अभेद्य बनो। युद्ध में अडिग वीर बनो।

४. अश्रमणा:-श्रम से न तो थको, न ही घबराओ। संसार में चहुं ओर अभाव ही अभाव है। अभाव पूर्ति हेतु सभी क्षेत्रों में श्रम आवश्यक है, अथक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। वही सृजन कर सकता है जो थकता नहीं। रचनात्मक साधना से सदा चरैवैति चरैवैति चलता जाता है और उद्देश्य की पूर्ति करता है-प्राप्त करता है।

५. **अशृथिता:**-शिथिलता, ढीलापन, सुस्ती प्रमाद भारी दोष है। प्रत्येक कार्य में सतर्कता, सावधानी, तत्परता के साथ अभ्यास करो, टालना हार है।

६. **अमृत्यवा:**-सब प्रकार की मृत्यु से मुक्त रहो। मृत्यु कई प्रकार की है। चारित्रिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, सार्वजनिक आदि मृत्युओं से बचो। सब क्षेत्रों में सजीवन हो।

७. **अनातुरा:**-आतुरता, विकलता, रोग सब हेय हैं। धैर्य (धृति) से काम लो और स्वस्थ रहो।

८. **अजरा:**-अर्थात जरारहित। बुढ़ापा मानसिक रोग है। अधिक आयु होना बुढ़ापा नहीं है, इच्छा शक्ति, मनोबल बना रहे। संयम, सदाचार, निश्चिन्तता, प्रसन्नतायुक्त, आहार-विहार, समुचित व्यायाम, प्राणायाम, सुनिद्रा आदि उपायों से जीर्णता दूर रहती है। फुर्तीला, सुदीप्त बनकर ही द्वेष का हनन करते हैं कुटिलता का निराकरण करते हैं और कांपते नहीं।

९. **अमविष्णव:**-पुरुषार्थ, प्रगति, उद्योग मानवता के लक्षण हैं। गिर कर उठो उठकर दौड़ो, वांछित स्थल पर पहुंचो। विफल होने के बाद पुन: पुरुषार्थ, प्रगति उद्योग से सफलता अवश्य मिलेगी।

१०. **सुपीवस:**-अर्थात् सुपुष्ट, स्वस्थ रहना। कृषिकाय होना अच्छा नहीं। हृष्ट-पुष्ट, सुदृढ़, सुडौल, सर्वांग विकसित होना चाहिये। साथ ही इच्छा शक्ति और शरीर पुष्ट व बलवान होना चाहिए।

११. **अतृषिता:**-अर्थात् तृष्णा रहित। तृष्णालु असन्तोषी होता है, चाहे कितना धन मिल जाये असन्तोष बढ़ता जाता है। सन्तोष सुखदायक और असन्तोष दु:खदायक होता है। धर्म और पुरुषार्थ से जितना मिले उसमें सन्तोष करो। जीने के लिये खाओ-खाने के लिये नहीं जीओ। (eat to live & not live to eat)

१२. **अतृष्णज:**-अर्थात् निस्पृह स्नेह और मोह में अन्तर है। स्नेह करो, मोह नहीं। स्नेह मोचक मोह बाधक; स्नेह सात्त्विक, मोह तामसिक; स्नेह मुक्त, मोह बद्ध; स्नेह में आनन्द, मोह में क्लेश; प्यार सबसे करो, बन्धन में न बन्धों। सब के प्रति कर्त्तव्य का पालन करो, सदा निस्पृह रहो।

पृथिवी के आधार

स्वामी श्रद्धानन्द जी के सुपुत्र श्री इन्द्र वाचस्पति ने अपनी पुस्तक में लिखा है **जीवनेच्छा, संघ शक्ति, चारित्र्यम्, कायिबलम्, उदात्तभावश्च पंच्चेति जीवनम्।** अर्थात् (१) **जीवनेच्छा**-निराश न होना, प्रभु प्रदत्त जीवन का एक-एक क्षण आत्म विश्वास, उत्साह व दृढ़ इच्छा शक्ति से जीना चाहिये

शोक भरे छन्दों में मुझ से कहो न जीवन सपना है
जो सोता है वह है मृतवत् जग का रंग न अपना है।

Tell me not in mournful numbers,
Life is but an empty dream;
For the soul is dead that slumbers.
And things are not what they seem.

(२) **संघ शक्ति**-संगठन में बल है। इससे बड़े-बड़े कार्य सम्भव हैं। वेद में भी कहा गया है:

संगच्छध्वम् संवदध्वम् संवो मनांसि जानताम्।
देवाभागम् यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

(३) सुदृढ़ चरित्र-चरित्र में दृढ़ता हो। प्रलोभन व स्वार्थ से न डगमगायें। सुदृढ़ चरित्र से ही देश के गौरव का प्रासाद बनेगा। देश के नेताओं की दशा विचारने योग्य है।

(४) कायिक बल-स्वास्थ्य भी आवश्यक है किन्तु दृढ़ इच्छा शक्ति स्वास्थ्य को बाधक नहीं बनने देती। श्रद्धानन्द जी के बेटे ने एक फेफड़े के बल पर समाज सेवा का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। महर्षि का ब्रह्मचार्य बल, राम भक्त हनुमान ने कायिक बल से ही समुद्र को पार किया। नेता जी सुभाष बोस ने भारतीय राष्ट्रीय सेना खड़ी की।

(५) उदात्त भाव-युवावस्था ढली। वार्धक्य का अधिकार हुआ। उत्साह क्षीण होने लगा। निराशा का उदय हुआ। परन्तु यह शारीरिक परिवर्तन समय पर आयेगा। उदात्त भाव सदा उन्नत रहना चाहिये।

यह पांच गुण मनुष्य के जीवन धारा को बदल देंगे। जीवन सदैव उन्नति, उत्थान की ओर चलेगा। इसी प्रकार पृथिवी के भी आधार हैं। विशाल सत्य, कठोर अनुशासन, दृढ़ संकल्प, व्रताचार को धारण करते हैं, उसका पोषण करते हैं।

पृथिवी पर निवास करने वाले वेदज्ञान की शिक्षाओं पर चलकर स्वयं भी व पृथिवी भी धन्य हो जाती है।

आइये! विचार करें अ० १२/१/१ मन्त्र की शिक्षा पर। उस पर मनन करके जीवन को उन्नत करें, राष्ट्र को उन्नत करके, भूतल को स्वर्ग बनायें।

सत्यं बृहत् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्मयज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युसं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥ (अ० १२/१/१)

बृहत् सत्यं	-	विशाल सत्य
उग्रम् ऋतम्	-	कठोर अनुशासन
दीक्षा	-	दृढ़ संकल्प, व्रताचार
तपः	-	मन, संयम तथा शारीरिक-संगठन
ब्रह्म यज्ञम्	-	विवेक एवम् संगतीकरण-संगठन
पृथिवीम् धारयन्ति	-	पृथिवी को धारण करते है,
नः भूतस्य भव्यस्य पत्नी	-	पत्नी हमारे भूत व भविष्य की स्वामिनी
सः पृथिवी	-	वह पृथिवी
नः उसम् लोकम कृणोतु	-	विस्तृत लोक सम्पादन करे।

Trust no future, however pleasant,
Let the dead past bury its dead;
Act act in the living present,
Heart within and God over-head.

नहीं भविष्यत में पतियायो, मृतक भूत को जानो भूत,
वर्तमान में काम करो तुम, सिर प्रभु मन दृढ़ यह करतूत,

वर्तमान का एक सिरा भूत है दूसरा भविष्य। वर्तमान महत्वपूर्ण है। उस पर अधिकार है। वर्तमान का सतर्कता से उपयोग करो, तब भूत की भूलों को सुधारा जा सकता है।

इस मंत्र में भूमि के धारक छः निर्देश हैं:

विशाल सत्य, कठोर अनुशासन, व्रताचार, तप, विवेक, संगठन इन षड् सम्पदाओं से पृथिवी का धारण होता है। जिस जाति, राष्ट्र में यह छः क्षमतायें निहित रहती हैं वह पृथिवी

को सार्वभौम सम्भालता है, भूत और भविष्य की स्वामिनी बनकर यह पृथिवी उस जाति राष्ट्र के लिये प्रत्येक दिशा में निर्बाध सुविशाल क्षेत्र सम्पादन करती है। यह षड् गुण किसी जाति को वीर बनाते हैं।

''वीर भोग्या वसुन्धरा''-वीर ही इन छः के आश्रय से पृथिवी का धारण व पोषण करते हैं। उन्हीं के लिये पृथिवी सब ओर से सुविशाल क्षेत्र खोला करती है।

षड् वीर्यों से युक्त होकर हम वीर सुवीर बनें। सम्पूर्ण पृथिवी को धारण करें। पृथिवी हमारे भूत को सुभूत और भविष्य को सुभव्य बनाये। प्रत्येक दिशा प्रदिशा में विस्तृत क्षेत्र सुलभ करायें।

(१) विशाल सत्य: देश अथवा राष्ट्र विशाल सत्य है। संस्था, दल, समुदाय, व्यक्ति यह अल्प सत्य हैं। विशाल सत्य की रक्षा के लिये आवश्यकता पड़ने पर अल्प सत्य की बलि दी जा सकती है।

अल्पसत्य की बलि का उदाहरण:

इंग्लैण्ड का विक्टोरिया नामक जहाज़ जापान पर आक्रमण करने आ रहा था। जापान ने सैनिकों को तैयार किया। एक सैनिक कमर में टारपीडो बांधकर हेलिकाप्टर से लम्बी चिमनी में कूद गया। टारपीडो फटा, सैनिक तो स्वाहा हो गया परन्तु जहाज तहस-नहस हो गया। जापान आक्रमण से बच गया। पूर्ण की रक्षा में अंश स्वतः सुरक्षित हो जाता है। पूर्ण विनाश की अपेक्षा अंश तो विनष्ट है ही।

(२) कठोर अनुशासन-मर्यादा और अनुशासन में कठोरता वांछित है। मर्यादा-अनुशासन में रहते हुये, प्रतिष्ठा, आत्म-संयम को न खोते हुये हम पहले अपना सुधार करें। तभी दूसरों का सुधार सम्भव है। यह अनुशासन स्वानुशासन ही वांछनीय है। स्वतंत्रता का आभूषण अनुशासन है, अन्यथा वह स्वच्छन्दता मात्र रह जाती है।

(३) दीक्षा-दृढ़ संकल्प-व्रताचार। प्रत्येक नागरिक दृढ़ संकल्प और व्रत धारण करे, यह आवश्यक है, इसी से दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त होती है, गौरव प्राप्त होता है। भव्य अतीत को सुन्दर वर्तमान में संजोया जा सकता है। दृढ़ संकल्प सत्य संकल्प से ही तो कठिन से कठिन कार्य भी सम्भव हैं।

उदाहरण-सिद्धार्थ के जीवन में प्रारम्भ से ही वैराग्य में प्रबलता आने लगी थी। सांसारिक धारा से दूर होते देख पिता ने वैराग्य की लौ शान्त करने हेतु अपने आमात्य से परामर्श कर मेले का आयोजन किया। जब सिद्धार्थ सभी सुन्दर बालाओं को निस्पृह भाव से पुरस्कार बांट चुके थे, मौन यशोधरा उपस्थित हुई। मौन भाषा में अपना पुरस्कार लिया। (वास्तविक मौन-मुनि) मौन में बड़ी शक्ति है। सिद्धार्थ ने गले की माला अर्पित कर दी। विवाह के प्रश्न पर जब यशोधरा ने क्षात्रधर्म को ललकारा तो कुछ ही दिनों में क्षत्रिय सिद्ध कर दिखाया। अन्तर की तड़प दृढ़ संकल्प में बदली और यह सम्भव कर दिखाया।

(४) तप-(वास्तविक तप केवल शारीरिक तप नहीं) सभी मानवों को सतत् मन संयम तथा अथक परिश्रम से एवम् सबके सम्मिलित तप से अपने को, समाज को राष्ट्र को और अनन्त विश्व को सुशिक्षित, सुसम्पन्न बनाया जा सकता है।

(५) विवेक-विवेक है तो सब कुछ है। विवेक की पतवार से जीवन नौका भयंकर तूफानों, झंझावातों, विकट भंवरों से पार लगेगी। रोष में, जोश में विवेक न खोएं। हृदय का धैर्य और मस्तिष्क का संतुलन बना रहेगा तो विवेक बना रहेगा। सभी ग्रन्थियां खुल जायेंगी।

कोई समस्या शेष नहीं रहेगी।

(६) संगतिकरण-बिना संगतिकरण समन्वय के बात नहीं बनती। अपने पराये की भाषा भावना से ऊपर उठकर ही सफलता मिलेगी। विजय श्री वरण करेगी। अन्यथा तेरी-मेरी में ही जीवन व्यर्थ बीत जायेगा।

इन छः निर्देशों को अपनाने से जीवन आनन्दमय बनेगा। स्वार्थों को तिलांजलि देते हुये दूरदर्शिता से जीवन चलेगा तो वर्तमान भी सुधरेगा, उसका सदुपयोग होगा जिससे भविष्य का भवन स्वतः ही निर्मित होता चला जायेगा।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नमये न नीचे
प्रारभ्य विघ्नविहिता विरयन्ति मध्याः।
विदनैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति॥

ऋषिबोधोत्सव सप्ताह में एक बार निम्नांकित प्रवचन बोली थीं

शिवरात्रि वाले दिन महर्षि को बोध की जिज्ञासा हुई जो उनकी वैज्ञानिक खोज की अद्वितीयता की द्योतक है।

प्रत्येक मानव के जीवन में ऐसे मनोवैज्ञानिक क्षण आते हैं, ज्वाला वहीं प्रदीप्त होती है, जहां चिनगारी हो, जो अघ्न्या हो, जिन्होंने अपनी आत्मा का हनन न किया हो। जिन्होंने अपने भीतर ब्रह्म ज्योति, अन्तर्ज्योति के प्रज्जवलन का सतत् प्रयास किया हो।

एक शिशु ही कहिये जो किशोरावस्था की ओर बढ़ रहा हो, एक ऐसी घटना, जो प्रायः हम सबके जीवन में होती रहती है, के मन में सच्चे शिव को जानने की जिज्ञासा इतनी प्रबल हो उठे, निश्चय ही असाधारण है और असाधारण वह किशोर मूल शंकर। वह अन्य बच्चों से भिन्न था। वह अपने साथ अपने पूर्व सुकृत्यों की अथाह पूंजी लेकर आया था। उन्हीं संस्कारों ने उसे झकझोरा और कालान्तर में मूलशंकर से स्वामी दयानन्द सरस्वती बना दिया। वे वास्तव में सरस्वती के धनी थे। जिनके मूर्धा के सानू से निकल हृदय के सोम सागर से वाग्धारा क्षरित हुई और जन-जन को जागरण का सन्देश दिया। उनकी विलक्षणता को देखते हुए ही हमारे स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा था-स्वामी दयानन्द की सबसे बड़ी विशेषता थी उनकी दूरदर्शिता। यह देखकर आश्चर्य होता है कि जिन बातों पर महात्मा गांधी ने अधिक बल दिया और उन्हें रचनात्मक कार्य कहा, प्रायः वे सभी काम स्वा० दयानन्द के कार्यक्रम में 50 वर्ष पूर्व शामिल थे। चाहे वह स्वभाषा, स्वदेशी और स्वराज्य का प्रकरण था अथवा अछूतोद्धार, स्त्री शिक्षा और नैतिक शिक्षा।

स्वामी जी धार्मिक नेता व राष्ट्रवादी सामाजिक नेता भी थे। भ्रमण, शास्त्रार्थ, भाषण, उपदेश, प्रचार किया।

वे एक दार्शनिक भी थे। कैसे दार्शनिक? कोई शास्त्रीय विशेषता वाले दार्शनिक नहीं अपितु

१. उन्होंने दर्शन का जीवन जिया।

२. उनके दर्शन की नींव जीवन की समस्याओं में अन्तर्निहित थीं।

३. उनके विचार में सत्य एक ही है, शाश्वत है, हर काल में एक सा है, उसे कभी नहीं छोड़ा।

कोई नया दर्शन नहीं :

१. संसार को कोई नया दर्शन नहीं दिया, नई दिशा दी।

२. वेदानुकूल जीवन यापन का दर्शन दिया,

३. वेदों ने दिव्य विचार, दिव्य जीवन का दिव्य दर्शन दिया।

४. स्वयं भी उसका अनुसरण किया और यही उपदेश भी दिया।

दर्शन का केन्द्र मानव है:

१. चाहे दर्शन हो, चाहे विज्ञान, मानव ही केन्द्र बिन्दू है,

२. मानव के पास ही बुद्धि है।

३. उस बुद्धि से चिन्तन भजन द्वारा तार्किक शक्ति को विकसित करना चाहिये।

4. मानव का जीवन ही सम्पूर्ण सर्वांगीण दर्शन है।

मानव ही मुक्ति की इच्छा रखता है और यम-अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह; नियम-शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान इनका पालन करते हुये उत्तोरत्तर उन्नति की ओर बढ़ा जा सकता है, इसे स्वामी जी ने अपने जीवन द्वारा सिद्ध कर दिखाया।

उनका स्पष्ट अभिमत था कि यदि मनुष्य चाहे तो अपने जीवन का स्वांकृत अर्थात् स्वयं बनाने वाला हो सकता है।

एक बार एक भक्त ने मनोवांछित सुपात्र सन्तान प्राप्त न करने का कारण पूछा?

उत्तर-पहले लोग वैदिक संस्कार करते थे। सदाचारी थे, अतः सन्तान में भी ओज था, तेज था, शूरवीरता थी। अब संस्कार छूट गये हैं और लोग इन्द्रिय दास और विषयासक्त बन गये हैं। कुरीतियों की भरमार, सत्ता निस्तेज, दीनता और दुःख व्याप्त हैं, अतः स्वामी जी सभ्यता और संस्कृति के विकास के पक्षधर थे।

अन्त में कवि प्रकाश के शब्दों में-

वह दयानन्द ब्रह्मचारी हनुमाऩ तुल्य,
बाधा, विघ्न, विपद-वारिधि रहाचीरता।
कृष्ण समान जिसमें
पुनीत नीति परता थी,
असुर संहारी राम के समान वीरता,
सूर्य सी तेजस्विता तो चन्द्रमा सी शीतलता
शैल सी विशालता, उदधि सी गम्भीरता,
शंकर सा प्रखर पाण्डित्य, बुद्ध सा वैराग्य
भागीरथ भान्ति तप, ध्रुव सम धीरता।

ऐसे प्रातः स्मरणीय, दिव्य गुरु देव दयानन्द के पावन चरणों में मैं अबोध टूटे फूटे शब्दों में हृदय की भावनाओं से पूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

मन

निधन के पूर्व दिनांक 13.2.2000 से 16.2.2000 तक के चार दिनों में चार प्रवचन दिये, पहला प्रवचन 'शरीर' से सम्बन्धित था। दूसरा 'मन' तीसरा 'बुद्धि' और व्यास पीठ पर ही व्याधिग्रस्त हो रही थी, परन्तु 'आत्मा' पर प्रवचन पूरा किया और कुटिया में 16.2.2000 को अस्वस्थता ने पूरी तरह घेर लिया।

आइये! देखते हैं, उन्होंने मन के बारे में इस कथानक के माध्यम से क्या समझाने की चेष्ठा की।

कपि अथवा बन्दर कपि का धातु अर्थ है कम्पाने वाला, हिलाने वाला, डराने वाला। यह पशु वस्तुओं को कम्पा कर अस्त-व्यस्त और नष्ट कर देता है। एक राजा को वन में से एक नवजात बन्दर का सुन्दर बच्चा मिल गया। महल में लाकर प्यार से पालने लगा। रानी, मन्त्रीगण और सेवकों ने विनीत भाव से निवेदन किया महाराज! बन्दर को न पालिये और यदि पालना ही है तो कृपया इसे खुला मत छोड़िये, राजा न माना।

बड़े होते ही बिगाड़ने और उजाड़ने लगा। उद्यान की फुलवाड़ियों को नष्ट करने लगा। मूल्यवान वस्तुओं को तोड़कर अस्त-व्यस्त कर देता। वह सभी को काटने और डराने भी लग गया। राजा यह देखकर भी हंसता रहा। एक दिन वह बन्दर राजा पर झपटा। क्रोध में आकर पास रखी तलवार से राजा ने उसका सिर काट दिया। सभी सेवकों ने राहत की सांस ली। पुनः महल में सुव्यवस्था हो गई।

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् (ऋ०१०.८६.५)

इसका आशय यही है कि कपि मेरे सुनिर्मित प्रिय आयोजनों को भ्रष्ट कर दिया करता है।

शिरोन्वस्य सवितं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥

मन्त्र का दूसरा भाग है जिसका तात्पर्य कि मैं इस का शीघ्र सिर काट डालूं। मैं दुष्कर्म के लिये कभी सुगमनीय न होऊं। इन्द्र (प्रभु) सर्वोत्कृष्ट है उसके मार्ग पर चलूं।

हमारे जीवन भवन में भी एक कपि रहता है। चंचल-नटखट और प्रबल। साधक कहता है कि मेरी सुरचित सुन्दर विविध विचारों और योजनाओं को यह कपि बिगाड़ देता है। वह कपि है मन। हम लोग अच्छी धारणा से योजनाओं को कार्यान्वित करना चाहते हैं परन्तु यह मन यदि सुमन नहीं है तो सभी कल्पनाओं और सुविचारों को ध्वस्त कर देता है। इसको काटना अथवा वश में करना भी चाहें वो भी यह न तो कर सकता है और न ही वश में आता है। परन्तु सुधार एवम् उच्च जीवन के लिए मन का वशीकरण ही एक मात्र इसके वध करने का ढंग है।

ओं तेजोऽसि तेजोमयि देही, वीर्यमऽसि वीर्यम्

मयिदेहि..मन्त्र में मन को वश में करके भक्त प्रभु से तेज, वीर्य, बल, ओज, मन्यु और सहनशीलता मांगता है।

प्रार्थना और स्तुति का अटूट सम्बंध है परन्तु शर्त यह कि कामनाएं श्रेष्ठ हों। हमें पृथ्वी से प्रेरणा लेनी चाहिये जो हमारी मां है, आश्रय देती है और आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। इसी प्रकार उषा से प्रचेतना प्राप्त करें। सूर्य संसार को अपनी ओर आकर्षित करता है। हम भी ऐसा बनें कि न केवल प्रकाश फैलाने की शक्ति अर्जित करें अपितु आकर्षण शक्ति भी हो। और यह उपलब्धि ज्ञान से मिलती है।

इदम् जगत्-यह जगत् गतिशील है। गतिशील जगत् से प्रेरित होकर मैं भी अपने जीवन को ऐसा बनाऊं-इससे मैं इस संसार में ज्ञान, विज्ञान, न्याय, नियम, नियंत्रण को जीवन में फिर संसार में मैं स्थापित कर पाऊंगा।

शिवाजी सो रहे थे। एक किशोर शयन कक्ष में घुस आया। हाथ में तलवार लिये था। शिवाजी जाग गये। पूछने पर कि क्या करने आये हो, युवक ने कहा कि मैं आपको इस तलवार से मारने आया हूं। मैं इतना दुःखी हूं। मेरी मां सख्त बीमार है, मृत्यु शैय्या पर है और आप चैन की नींद सो रहे हो, आपने कुछ भी तो मां के लिये नहीं किया। शिवाजी गम्भीर हो गये, किशोर को शान्त कर तुरंत मंत्री के द्वारा मां के इलाज की सारी व्यवस्था कर दी।

कोई सत्ता है जो वैश्वानर ज्योति होकर सबका शक्ति स्रोत है। वही ज्योति मैं भी बनूं। मैं भी उस नियामक से प्रेरणा लूं। पहले तो मन और बुद्धि से द्योतित बनूं। फिर संसार में इस प्रकाश का प्रसारण करूं। प्रभु में प्रवेश होकर प्रदीप्त हो जाऊं।

रामानुजम ने स्वयं के जीवन का परित्याग करके लोगों में स्फूर्ति का मन्त्र फूंका। विश्व के कल्याण के लिये कामनाएं संजोईं।

अपने जीवन में ही परिवर्तन लाना होगा। सच्ची शांति तब मिलेगी।

जब हम 'संतोष' और 'तप' को साधना का अंग बनायें, मन को वश में लाने के उपरान्त ही यह सम्भव होगा। तभी मैं अपनी सत्ता को लोक व प्रभु मे स्वाहूत कर सकूंगा।

'मेरा' 'मैं' अर्थात् अहम् की भावना हटानी होगी। सुभूत करना सीखें यदि प्रार्थना व साधना फलीभूत करनी है।

मेधावी जन, क्रांत योगी गुणों से परिपूरित हैं। जो प्रभु का स्तवन करते है वही ब्रह्म की अनुभूति करते हैं और आप्त पुरुष कहलाते हैं। संसार के कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। वे प्रबुद्ध व ज्ञानी होते हैं। प्रभु मिलन की साधना करते हैं।

दूसरे प्रकार के लोग अविचेता, अविवेकी जो हमारे जैसे होते हैं, वे मृत्यु सागर में डूबते हैं। हमारी प्रार्थना में शक्ति नहीं होती। तो हम अप्रचेतसा से प्रेचेतसा बनें। इस दिशा के लिये मन की कामनाओं को संवारना होगा। दक्षता प्राप्त करने व कर्तव्य के लिये मन को वापिस बुलाना होगा। आयु भी लम्बी होगी। मन रूठा जग रूठा। कपि चंचल होता है कंपाता है। उस का सिर काटना होगा। अर्थात् इसको पूर्णतया वश में करना होगा।

आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
ज्योक च सूर्य दृशे। (ऋ०१०.५७.४)

मानव! अपने को मना। मन तुझ से कभी न रूठे। तेरे कर्म हीन, अदक्ष, निर्जीव और आभाहीन का कारण मन का विभ्रम है। मन के वापिस आते ही अर्थात् वश में करते ही कर्तृत्व के भाव और कर्मक्षमता तरंगित होने लगेगी।

इस मन के संकल्प में शिवता और वेग की स्थापना कर तब अतुल दक्षता आ जायेगी। तुम में संजीवन आ जायेगा। अपने बुझे मन की ज्योति को जगा। तब तू सूर्य के दर्शन से वह चेतना और प्रकाश पायेगा कि तू संसार के अज्ञानान्धकार को मिटा देगा।

मन में दुर्बलता आना ही मन का जाना है। मन में प्रबलता, उमंग और उत्साह का प्रवेश होना ही मन का आना है। मन में हेय विचार और हीन भावनायें जब प्रवेश करती हैं तो वह अर्जुन की तरह विमोहित हो जाता है। उसमें शिथिलता आ जाती है। इसे मन का चला जाना या रूठना कहते हैं। उदात्त भावनाओं से उसमें अमित ओज भर जाता है। इस को मन का लौटना कहते हैं। तो आये हुए मन में चार सिद्धियां प्राप्त होती है:

1. सुकर्म, यज्ञ, प्रज्ञा, कर्तृत्व
2. दक्षता, क्षमता, शक्ति आदि
3. जीवत्व, आत्म बल
4. सूर्य दर्शन से दर्शनीयता और रोचकता की अनुभूति।

अत: मन को सदा स्थिर और निरन्तर आत्म बल में अक्षुण्ण रखना चाहिये।

आत्मा

दिनांक 16.2.2000 को श्रृंखला का अन्तिम प्रवचन **आत्मा** पर अवलम्बित था।

विगत तीन दिवसों में शरीर, मन, बुद्धि पर विषद चर्चा हुई थी। आज आत्मा का उल्लेख किया जायेगा। इस जीवन का यह अन्तिम प्रवचन था।

आनन्द सभी चाहते हैं, पर ढूंढते नहीं। जहाँ आनन्द है ही नहीं, वहां ढूंढने के लिये खूब भटकने के पश्चात् भी आनन्द नहीं मिलेगा। बिना किसी उपलब्धि के भटकते हुये संसार से चले जाना पड़ता है।

जीवात्मा का भोजन परमात्मा ही है। इसी भोजन को जीवात्मा पाना चाहता है। प्रश्न यह है कि इस भोजन को कैसे पाया जाये? हमारी आत्मा अनन्त काल से इस आनन्द की खोज में लगी है। यह बुद्धि के माध्यम से सम्भव है। वह चर्म चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। न ही अपनी आत्मा देखी जा सकती है। बाहर के नेत्र बन्द करने होंगे। तीव्र बुद्धि और पवित्र मन सहायक सिद्ध होते हैं।

मस्तिष्क विचारों तथा चिन्तन का अधिष्ठान करता है और हृदय भावनाओं तथा संकल्प का अधिष्ठान करता है। जो व्यक्ति अपने मस्तिष्क और हृदय को स्थिर और सुन्दर तथा विजयी बना लेते हैं वे इन्द्रवान, आत्मवान, आत्म सम्बल से सम्पन्न बन जाते हैं। इसलिये चित्तवृत्तियों का निरोध करके आत्म अवस्थिति सम्पादन कर। तब

व्यक्ति अपने में अवस्थित होने पर वह शुद्ध, बुद्ध, मुक्त और सतत आनन्दी हो जायेगा अपने को सुकृत की योनि में स्थापन कर, अपने देह यज्ञ को पशुवत भोगयोनि मत बना। सुकर्म योनि बना।

हे प्रभु! हे दिव्य देव! मुझ आत्मा में विशाल ज्ञान और बल स्थापना करें ताकि मैं विवेकी बनकर अपने जीवन यज्ञ को सुकृत रूप दे सकूं। आत्म छवि से दिव्यता प्राप्त कर सकूं।

तू देह नहीं है देही है। तू शरीर नहीं है तू शरीरी है। तू मर्त्य नहीं है अमर्त्य है। तू मरण धर्मा नहीं है अमर खिलाड़ी है। तू जड़ नहीं है चेतन है। तू अशुद्ध नहीं है शुद्ध है। तू इन्द्रियों का स्वामी है। तू अमृत पिता का अमृत पुत्र है।

तू अपने स्वरूप, अधिकार, सामर्थ्य को पहचान। तू पुरुष है। तू शुद्ध, पवित्र, निष्पाप है। इसलिये अपने स्वरूप और स्वसामर्थ्य को पहचान। समस्त तापों, विकारों, वासनाओं, व्यसनों, कुविचारों, पापवृत्तियों, हीनताओं और हेयताओं को जीवन दुर्ग में से बाहर निकाल।

प्रेय से हटकर श्रेय को प्राप्त कर। श्रेय से भी ऊपर परम धाम में प्रवेश कर।

जिनके जीवन में आत्मा का शासन होता है, आत्मबल होता है, वे बड़े स्तुत्य और प्रशस्त बन जाते हैं। वे वन्दनीय बन जाते हैं। वे आदरणीय हो जाते हैं। उपासनीय, नमनीय हो जाते हैं।

जहां इन्द्रियों का शासन होगा, वहां भोग, विलास और निकृष्ट कर्म व्यापेंगे। जहां आत्म सन्तुष्टि, आत्म बल, इन्द्र अर्थात आत्मा का शासन होगा वहां संयम, सदाचार होगा और शुभ कर्मों का सम्पादन होगा। सर्वत्र यश, विजय और साफल्य की प्राप्ति होगी।

मानव देह में स्थित यह आत्मा सचमुच अतिथि है। यह सदा गमन करता है। इस अतिथि का आदर, सत्कार, पूजन परम धर्म है, ध्यान, भजन, प्रार्थना, स्वाध्याय से यह आत्म अतिथि तृप्त होता है। यह उक्त कर्मकर के ही गृही शरीर भोजन करे। कोई धीर ही होगा जो आत्मा अतिथि को तृप्त करता है। हम यदि जीवन शत वर्ष का है तो सारा जीवन इस महल रूपी शरीर को सजाने में लगे रहते हैं। विषयों के भोगने में लगे रहते हैं। आत्मा अतिथि से न कोई बात करता है और न ही पहचानता और जानने का प्रयास करता है। आत्मा जब देह को छोड़ता है तो तिरस्कृत होकर जाता है।

इस आत्मा-अतिथि का पोषण तो ब्रह्मामृत से ही होता है तब आत्मा की तृषा शान्त होती है तभी वह समाहित और स्थितप्रज्ञ बनकर आत्म तुष्टि और आत्मानन्द से युक्त रहता है।

जितना जितना भोगों को भोगते चले जाओ, उतना उतना विषयेच्छा दावानल के समान भड़कती चली जाती है। वह व्यक्ति कुटिलता का मार्ग अपनाता है। चिन्ताओं में घिरा रहता है। जब वह विषयाग्नि को बुझाकर शीतल ब्रह्मजल का पान करेगा, धीर

ही समझ पायेंगे इस तत्व और तथ्य को। फिर इनमें से कोई धीर ही साधना की ओर प्रवृत्त होगा और विरला ही सिद्धि को प्राप्त कर सकेगा।

तीन-चार दिन की प्रवचन श्रृंखला आज समाप्त करते हुए यह स्पष्ट कह सकती हूं कि हमारी आत्मा अनन्त काल से आनन्द की खोज में लगी है। शरीर-मन बुद्धि इस त्रिकोणिक सहयोग से इनके माध्यम से आत्मा इस नैर्सिगक आनन्द के धाम को प्राप्त कर सकती है। शरीर की पुष्टता, मन की एकाग्रता और बुद्धि की सूक्ष्मता इस आत्मा को अपने इष्ट को पाने में दक्षता क्षमता मिल जाती है।

कहानी

नव प्रभात

-श्रीमती प्रकाशवती रत्ना

प्रातः एलार्म की घंटी ने राका को झकझोर दिया। घंटी सुनते ही बिस्तर छोड़ दिया। आज उसके जीवन का एक महत्वपूर्ण दिन था जिसका निर्णय उसने बहुत सोच समझकर किया था। दैनिक कार्यों से निवृत्त हो, नहा धोकर गुलाबी परिधान पहन ड्रेसिंग टेबल के सामने आई। हल्का-फुल्का किन्तु सुरुचिपूर्ण ढंग से श्रृंगार किया। आईने में जब अपनी छवि देखी तो मुग्ध सी रह गईं, मानो वह स्वयं अपने लिये अपरिचित हो, चेहरे पर प्रसन्नता की रक्तिम आभा थी। आकर्षक केश विन्यास और उस पर गुलाब का फूल, उसके सौन्दर्य को और भी निखार रहा था। सोचने लगी कहां है कुरूपता जिसने उसको आजीवन हीनभावना से ग्रस्त रखा? कहां है वह कुरूपता, जिसके कारण उसके पति ने उसे देखना भी न चाहा, जिसके कारण उसे घर त्यागना पड़ा और अपमान का विष पीना पड़ा। आज तो मानो वह अपने रूप पर ही ठगी सी रह गई। खो गई अतीत के विचारों में। जबसे राका ने घर छोड़ा था, कभी दर्पण में अपने रूप को देखने का प्रयास भी नहीं किया था। स्मृति के पटल खुलते गए और याद आया वह दिन, जब अभी यौवन की दहलीज़ पर पैर ही रखा था, कि माता-पिता ने कन्यादान के उत्तरदायित्व से निवृत्त होने हेतु उसका सम्बंध एक खाते पीते घर के सुन्दर एवं सुशिक्षित युवक से कर दिया। दुल्हन बनी। बड़े अरमानों से ससुराल की दहलीज़ लांघी। अल्हड़ आयु थी किन्तु फिर भी पति के व्यवहार में उपेक्षा उसके लिए कष्टदायक हो रही थी। वधु स्वागत समारोह में जब सबकी आंखे दुल्हन की ओर थीं। उसके पति अनमने से बैठे थे। सोचा संकोची स्वभाव के होंगे मन को आश्वस्त कर लगी सुहागरात की प्रतीक्षा करने।

ससुराल में भी कहीं स्वागत व प्यार का मीठा बोल सुनने को नहीं मिला। इस प्रकार के वातावरण से मन दुःखी था लेकिन भरोसा था पति पर। सोचा अभी बांहों में सब दुख समाप्त हो जाएगा। इस विचार ने अंग अंग को गुदगुदा दिया, आश्वस्त होकर मधुकामिनी की प्रतीक्षा करने लगी। रात को सजी सेज पर अपने प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही थी कि बाहर से ज़ोर-ज़ोर की मिश्रित और कर्कश ध्वनियां सुनाई

दीं। स्वर से अपरिचित राका अपने पति द्वारा उचरित कटु वचनों को पहचान न पाई। इतने में द्वार खुला और उसके पति ने प्रवेश किया। किन्तु कहां उसे पदचाप में मधुर मिलन का संगीत? कहां पदचाप में मिलन की व्यग्रता? आते ही उसके पति ने उसकी आशा के विपरीत कर्कश स्वर में उसकी कुरूपता का बखान शुरू कर दिया। हतप्रभ सी राका के कानों में इन शब्दों के साथ-साथ अपनी सखियों के शब्द गूंजने लगे "राका! तेरे रूप पर तो जीजा जी दीवाने हो जायेंगे।" समझ नहीं पा रही थी कि क्या सच है? बिना देखे ही कैसे उसके पति ने उसे घोषित कर दिया? पति क्रोध के आवेश में थे ही, बोले-"मुझ जैसे शिक्षित एवं सुन्दर व्यक्ति से तुम प्यार व परिणय की आशा मत करना। तुम तो मेरे साथ मित्र मण्डली में जाने योग्य भी नहीं। जब आ ही गयी हो तो रहती जाओ और दिन काटो"। इस प्रकार सुहागरात का यह कटु उपहार देकर तथाकथित सुशिक्षित पति उसे निहारे बिना ही बाहर चला गया। राका जो एक स्वर्णमय संसार में खोई थी, कांप गई। जिस देवता के चरणों में अपने को समर्पित करने की चाह थी वह मानो विकराल दानव निकला। किंकर्तव्यविमूढ़ सी खुले द्वार को देखती रह गई।

माता पिता की इज्ज़त, समाज की मर्यादा के कारण कुछ समय तो ससुराल में काटा और मानसिक वेदना सहती रही। बातों-बातों में उसे यह ज्ञात हो गया था कि उसके पति ने उसे विद्यालय की एक अन्य लड़की के साथ देखा था। अब वास्तविकता उसके सामने स्पष्ट हो गई। उसके स्वाभिमान ने अंगड़ाई ली। खोई हुई शक्ति ने करवट ली। मुट्ठियां कस गईं कि ऐसा भी क्या घमण्ड कि एक बार उसे देखना भी नहीं चाहा। नारीत्व का अपमान असह्य हो उठा। मन ही मन दृढ़ निश्चय किया और अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करने लगी। उस प्याररहित कृत्रिम वातावरण में उसका दम घुटने लगा। उसे घर के एक भी सदस्य के व्यवहार में सहानुभूति की झलक नहीं मिली।

कुछ समय ऐसे ही बीता। तीज का त्यौहार आया लेकिन कहीं उमंग नहीं थी। उसका भाई उसे लिवाने आया। जैसे ही वह अछूती कली अपने घर पहुंची उसके उदास एवं विवर्ण चेहरे को देखकर माता-पिता स्तम्भित रह गए। धीरे-धीरे जब सारी स्थिति जान गए तब लगे अपनी पुत्री को संसार व समाज की ऊँच-नीच समझाने।

राका ने मां के घर आकर ही शांति की सांस ली थी। ससुराल में बिताया समय उसके रोम-रोम को कंपा देता था। पति की मुखाकृति तो याद नहीं आती थी, आती भी कैसे, हां रह-रह कर उसका कर्कश स्वर अवश्य कानों में गूंज जाता। हां कभी-कभी दर्पण के सामने ठगी सी घण्टों खड़ी रहती। मानो अपनी कुरूपता का अनुमान लगा रही हो। बेटी की यह विक्षिप्त अवस्था माता पिता के लिए असह्य हो उठी। राका क्या थी एक दम पत्थर की मूर्ति। माता पिता का उपदेश उसे अच्छा नहीं लगता और अपमान से दुखी राका इस बात के लिए भी तैयार नहीं थी कि उसके माता पिता उसके पति से बात करें। गुमसुम विचारों में खोई राका के तरुण कन्धों पर

गम्भीरता के बोझ ने उसके अल्हड़पन को जाने कहां भगा दिया। माता पिता के समझाने पर एक दिन बोली-''पिताजी! आपने कन्यादान करके पुण्य अर्जित कर लिया है और सामाजिक व्यवस्थानुसार अपने दायित्व से मुक्त हो चुके हैं। मैं पशु नहीं। आपका व अपना अपमान अब मेरे लिए असह्य है। मैं किसी भी तरह उस नरक में लौटने को तैयार नहीं। अब मैं अपना जीवन स्वयं जीऊँगी। किसी पर भार न बनूंगी। मुझे इस अपमानित जीवन बिताने पर बाध्य न करें।''

कुछ दिनों बाद ही उसने एक छोटे से विद्यालय में शिक्षण का कार्य प्रारंभ कर दिया तथा साथ ही अपनी योग्यता बढ़ाने हेतु शिक्षा भी। धीरे-धीरे दृढ निश्चय, परिश्रम, पुरुषार्थ एवं आत्म विश्वास के बल पर सफलता के सोपानों पर चढ़ती हुई वही उपेक्षित राका एक बड़े विद्यालय की प्रधानाचार्या के पद पर आसीन हुई। प्रबन्ध कर्त्री समिति, शिक्षिकाएं, अभिभावक, छात्राएं व कर्मचारी वर्ग उसकी योग्यता एवं सुसंस्कृत व्यवहार पर मुग्ध थे। उसके योग्य एवं शालीन संरक्षण में विद्यालय उत्तरोत्तर प्रगति करने लगा तथा विद्यार्थी सुसंस्कृत बनने लगे।

एक दिन जब वह अपने कार्यालय में कार्यरत थी कि एक नवयुवक ने अपने बच्चे के साथ प्रवेश किया। नाम पट्टिका पर 'आर0 सिन्हा' पहचानने का प्रश्न ही नहीं था, लेकिन ज्योंहि प्रवेश फार्म पर पिता का नाम पढ़ा तो स्तब्ध हुई, आंख उठाकर ऊपर देखा। बच्चे का प्रवेश हो गया। राका ने बच्चे की ओर स्नेह से देखा किन्तु विस्मित। बच्चे की मुखाकृति पर न शैशव की चंचलता न प्रसन्नता। विस्मित राका ने बालक की माता से मिलने की इच्छा व्यक्त की ताकि परिस्थिति को समझकर बालक में स्वाभाविक चंचलता लाने का प्रयास किया जाए।

अगले ही दिन एक अति सुन्दर, गौरवर्ण एवं छहेरे बदन की नारी ने कार्यालय में प्रवेश किया। अभिवादन के उपरान्त पूछा-क्या आप ही दिवाकर की मां हैं? कुछ वार्तालाप के उपरान्त राका ने भांप लिया कि यह नारी भीतर ही भीतर किसी मानसिक वेदना से पीड़ित है। बोलो बहन क्या कारण है कि न तो आप सन्तुष्ट व प्रसन्न प्रतीत होती हैं, न ही आपके बालक में बाल सुलभ चंचलता ही कहीं दृष्टिगोचर होती है। दिवाकर की मां, जिसका नाम रूपा था बोली-मेरा हाल अवर्णनीय है। पति के घर में आते ही मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे पति ने अपनी पहली पत्नि को बिना देखे ही कुरूप कह अपमानित कर घर से निकाल दिया है। नारी होने के नाते यह बात न केवल मेरे लिए वज्रकारण है प्रत्युत सम्पूर्ण नारी जाति का अपमान है। विवाह से पूर्व मुझे इसका ज्ञान न था। राका-क्या आपने उनकी पहली पत्नी को देखा है, उससे मिली हैं? रूपा-नहीं, मैं तो उसे जानती भी नहीं। हां मिलने की इच्छा अवश्य है। राका-आप उसे क्यों मिलना चाहती हैं? रूपा-उससे क्षमा मांगने। अपनी स्थिति स्पष्ट करके मुझे सन्तोष मिलेगा। मैं जानती हूं कि अपनी इस विक्षिप्त मन:स्थिति में मां व पत्नी दोनों कर्तव्यों का निर्वहन भली भांति नहीं कर पा रही। अपने पति की प्रसन्नता व अपने बालक के स्वाभाविक विकास के लिए मैं भी

चिन्तित हूं।

राका-(अधिक अपने को रोक न पाई) बोली-वह तुम्हारे सामने है। बहिन दु:खी न हो। मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं। उनके साथ इतना ही सम्बन्ध था। अपने जीवन में सुख के सुमन खिलाओ। तुम्हें प्रसन्नता होगी कि मैं भी नए जीवन में प्रवेश कर रही हूं। तुम तीनों अवश्य आना और साथ ही राका ने निमन्त्रण पत्र रूपा के हाथ में दे दिया।

बाहर किवाड़ की घण्टी से राका की विचारतन्द्रा टूटी और राकेश ने प्रवेश किया बोले-राका क्या सोच रही हो? आज कुछ सोचने का दिन नहीं, हां चलो, सब हमारी प्रतीक्षा में होंगे। शुभ मुहूर्त के क्षण सन्निकट हैं। आओ नए जीवन में नव प्रभात को स्वर्णिम बनाएं।

राका खुशी-खुशी राकेश की बांहों में बाहं डालकर चल पड़ी। सोच रही थी कि अमावस की राका को राकेश ने पूर्णिमा में बदल दिया। जैसे जीवन का नवप्रभात मिल गया हो।

Quotations liked by Prakash Ratna

- To find peace, come out of passions.
- A life of virtue is noble and excellent.
- Be upright, gentle and pure hearted.
- Acquire truth by practice.
- Make your every thought word and deed sweet & pure.
- Meditation is the secret of all growth on spiritual life and knowledge.
- What you are, so is your world.
- Perfect love is perfect power.
- Be of single aim, have a legitimate and useful purpose, and then devote yourself unreservedly to it.
- Aspiration can carry a man to heaven.
- Inward harmony is spiritual power.
- Character is destiny, happiness is mental harmony.
- Heaven and hell are in this world.
- Whilst a man loves lusts, he cannot love wisdom.
- Be childlike and not childish.
- Selfishness ruins, selflessness makes.
- जो अन्याय से किसी को नहीं मारते हैं, वे कीर्ति और एश्वर्य से युक्त हो जाते हैं। (यजु0 27-2)
- ईश्वर जिनकी रक्षा करने वाला है, उनकी कैसे पराजय हो सकती है? (ऋ.1-7-10)

आकाशवाणी से प्रसारित प्रकाशवती रत्ना की वार्ताएं

आर्य समाज और समाजोत्थान

सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि आर्य समाज है क्या? आर्य शब्द का अर्थ है उत्तम, श्रेष्ठ एवं उदात्त भावनाओं का समुच्चय और समाज से तात्पर्य संघ से, सभा से एवं संगठन से है। इसलिए आर्य समाज श्रेष्ठ व्यक्तियों के संगठन को कहते हैं। तभी तो आर्य समाज का सर्वोच्च लक्ष्य "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" अर्थात् विश्व के सभी व्यक्तियों को श्रेष्ठ व्यक्ति बनाना निहित है।

इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु महर्षि दयानन्द ने सन् १८७५ में सर्वप्रथम मुम्बई नगर में आर्य समाज का प्रादुर्भाव किया था और अपनी विभिन्न क्षेत्रों की देनों में आर्य समाज के अकाट्य दस नियम देकर एक प्रकृष्ट मार्ग प्रशस्त किया। विशिष्ट बात यह है कि व्यक्ति श्रेष्ठ तभी बन सकता है, जब वह सत्य के मार्ग को अपनाये। इन दस नियमों में भी प्रथम पांच नियम सत्य पर आधारित हैं। जैसे- १. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उनका आदि मूल परेश्वर है। २. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी आदि परमेश्वर के २० गुणों का विवेचन कर उसी परमात्मा की उपासना का आदेश दिया है। ३. वेद को ही सत्य विद्याओं की पुस्तक माना है और इसका पढ़ना पढ़ाना प्रत्येक आर्य का परम धर्म माना है। ४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में प्रत्येक व्यक्ति को उद्यत रहना चाहिए। ५. सब काम सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए। स्पष्ट है कि लक्ष्य 'सत्य' है, जिस धुरी पर सम्पूर्ण आर्य समाज को एवं संसार को चुम्बकीय ऊर्जा के साथ जीवन व्यतीत करना है।

शेष पांच नियम आत्मा, समाज और विश्व के उत्थान के लिए प्रेरित करते हैं। जैसे ६. शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करके संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। ७. पारस्परिक व्यवहार प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य हो। ८. अविद्या का लोप और विद्या की वृद्धि लक्ष्य हो। ९. सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी आवश्यक है। १०. अपने व्यक्तित्व को उठाने के लिए हितकारी नियम का पालन करने में व्यक्ति स्वतंत्र है परन्तु सामाजिक एवं सर्व हितकारी नियम पालने में उसे परतन्त्र रहना होगा।

इस समाज के संगठन में नियमदाता ने कितने उदात्त विचार दिए हैं। जिनमें हर प्रकार की संकीर्णता, वैमनस्य, दुर्व्यवहार, ईर्ष्या, द्वेष आदि का परित्याग है और समाज

के आध्यात्मिक, पारस्परिक समभाव, प्रशासन में स्वच्छता, सरल जीवन और उच्च विचार, विश्व-प्रेम आदि का समुचित प्रकार मिलता है, जो समाज को उन्नत एवं संगठित करने में सहायक हैं। इनके ऊपर चलने से ही मनुष्य मात्र का कल्याण हो जाता है।

इन नियमों से कुछ महत्वपूर्ण तथ्य परिलक्षित होते हैं जैसे-ईश्वर एक है, अनेकों ईश्वर के नाम पर पूजा वास्तविक ईश्वर की पूजा नहीं है, वेद ईश्वरीय ज्ञान है, पक्षपात का कहीं नाम नहीं है। सत्य में दृढ़ता है, समाज के उत्थान के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सर्वदा उद्यत रहना चाहिए और अन्त में सद्व्यवहार का आदेश दिया है।

अब आइये देखें कि १८७५ से लेकर अब तक किस-किस क्षेत्र में आर्य समाज ने समाज को उज्ज्वल स्वरूप प्रदान करने के लिए कार्य किया है:-

१. धार्मिक क्षेत्र-इसके अन्तर्गत धर्म की यही परिभाषा देकर इसे रूढ़ीवादिता से अलग किया, मतमतान्तरों से अलग हटकर धर्म की परिभाषा में सत्याचरण, पक्षपात रहित न्याय, कर्तव्यपालन तथा सद्व्यवहार को बल दिया गया है। आधुनिक मत मतान्तरों में मूर्ति पूजा आदि आडम्बर को धर्म नहीं कहा जा सकता। परिणामतः भारत वर्ष में आज जो विद्वेष, हिंसा, अकर्मण्यता, स्वार्थ, धन लिप्सा, भेदभाव, अनैतिकता आदि यह धर्म की असत्य परिभाषा के परिणाम हैं। विवश होकर राजनीतिज्ञों को यह कहना पड़ रहा है कि राजनीति को तथाकथित इस धर्म से अलग ही रहना चाहिए, वरना सही धर्म तो राजनीति का आधार बन सकता है।

२. शिक्षा का क्षेत्र-सत्यार्थप्रकाश में स्पष्ट आदेश है कि शिक्षा के समान अवसर प्रत्येक व्यक्ति को प्रदान किए जाने चाहिए। ऊँच-नीच का भेद न हो, नारियों की शिक्षा पर बल दिया और बड़े-बड़े डी.ए.वी. कालेज, गुरुकुल खोले गए, जिनमें लाहौर, रावलपिंडी, कानपुर, इलाहाबाद, जालन्धर, देहरादून, शोलापुर, अजमेर, बनारस आदि में स्थित डी.ए.वी. कालेज तथा गुरुकुल कांगड़ी गुरुकुल वृन्दावन, कन्या महाविद्यालय जालन्धर, कन्या गुरुकुल देहरादून, बनारस, एटा आदि की संस्थाएं तो प्रसिद्ध हैं ही साथ ही उत्तर एवं मध्य भारत में विद्यालयों के प्रादुर्भाव की बाढ़ सी आ गई। इन सभी विद्यालयों में महिलाओं, दलितों, हरिजनों और पिछड़ी जाति के सभी लोगों को समान शिक्षा दी जाती है।

३. देश में आर्य समाज ने अनेक अनाथालय खोल कर उनकी शिक्षा दीक्षा की व्यवस्था की।

४. बाल विवाह, सती प्रथा, बहु विवाह आदि का उन्मूलन करने का प्रयास किया तथा विधवा विवाह को प्रोत्साहित कर उनके जीवन के नारकीय कष्टों के निवारण का निरन्तर प्रयास करता रहा है और कर रहा है। इन प्रयासों का प्रतिफल भारतवर्ष के जनमानस के समक्ष है।

५. अछूतों और दलितों के प्रति उच्च जाति की उदासीनता को दूर कर, इस स्थिति पर ला खड़ा किया है जिसमें वह शिक्षा, राजकीय सेवाओं में, प्रदेश में

बड़े-बड़े उद्यमों को लगाने में सक्षम बनाया है एवं समानता के धरातल पर लाकर खड़ा किया है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या इस महान संस्था की आज समाजोत्थान के लिए कितनी सार्थकता है? इससे पूर्व कि इस विषय पर कहा जाए, यह देखना होगा कि समाज की और विशेष रूप से भारत की वर्तमान परिस्थितियां क्या हैं? पूरा का पूरा देश भौतिकवादी बन गया है जिसके फलस्वरूप वैदिक परम्पराओं को भुलाकर मानव स्वार्थपरता, धन लोलुपता, नैतिक व्यवहारों की उपेक्षा, वैमनस्य और स्वार्थ की पैदा की हुई आपाधापी में पड़ गया है। इसी के कारण देश में चहुं ओर से व्यभिचार, छीनाझपटी, कुर्सी का मोह व्याप्त हो गया है। परिणामत: देश में अराजकता, हिंसा तथा राजनीति और अपराधीकरण का अन्योन्याश्रित संबंध उत्पन्न हो गया है।

इन परिस्थितियों का निराकरण आर्य समाज द्वारा दिए गए सिद्धान्तों पर ही संभव है क्योंकि आर्य समाज वेद के इस मंत्र का प्रचार करता है-

ईशावास्यम् इदम् सर्वम् यत्किंच जगत्याम् जगत्।
तेन त्यक्तेन मुञ्जीथा, मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

जिसकी दूसरी पंक्ति स्पष्ट आदेश देती है कि परमात्मा का दिया हुआ सब कुछ तेरे लिए है परन्तु त्याग की भावना से इसका भोग करो और दूसरे के धन को लालच की दृष्टि से मत देखो। आज का मानव और विशेष रूप से युवक यह मन बनाए हुए है कि प्रभु स्मरण एवं नैतिक व्यवहार के लिए वृद्धावस्था में पर्याप्त समय मिल जायेगा। मनुष्य को सदा रहने वाला ईश्वर के साथ हमारा संबंध सदा बनाए रखने से ही मनुष्य पूर्ण सुखी हो सकता है। इस सत्य शाश्वत सिद्धान्त को प्राय: मनुष्य भुला देता है। जो मनुष्य भौतिकवाद की दलदल में फंसा हुआ, विषय भोगों में आसक्त है तथा धन की प्राप्ति में अंधा हो गया है, ऐसे अज्ञानी व्यक्ति को आत्मा-परमात्मा, यम-नियम-ध्यान, समाधि आदि विषय अच्छे नहीं लगते। वह तो मानने लगा है कि यही प्रथम व अन्तिम जन्म है। आर्य समाज ने वेदों के शाश्वत एवं सब कालों में प्रमाणित सिद्धान्तों व आदेशों का मार्ग प्रशस्त किया है। 'सादा जीवन एवं उच्च विचार' को प्रतिपादित किया है।

स्थायी सुख शांति की प्राप्ति के लिए आज के मनुष्य ने सारी पृथिवी का स्वरूप बदला है, पर्वतों को मैदानों में बदला है, नदियों के प्रवाह मोड़ दिए हैं, बांधों का जाल बिछा दिया है, भूमि से खनिज पदार्थों को निकाला है, सड़कें, वाहन, संचार साधन, तकनीकि संयंत्रों, इलेक्ट्रोनिक्स, उपग्रहों आदि का ढेर लगा दिया है, परन्तु निरीक्षण करने पर पता चलता है कि इन सब कार्यों के होने पर भी जीवन पहले की अपेक्षा अधिक अशान्त, भयभीत तथा दुखी बन गया। इसलिए इस दिशा में परिवर्तन करना होगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस प्रकार प्राकृतिक अनुसंधान न हो, अपितु आर्य समाज इस चीज़ पर बल देता है कि संग्रह प्रवृत्ति को छोड़कर अपरिग्रह की

भावना यदि व्याप्त हो जाए तो चिरंतन सुख का आभास हो सकता है। मानव को इन उपलब्धियों से उस परम सत्ता को भुला देना अभीष्ट नहीं है।

ईश्वर चिन्तन, ब्रह्म विद्या के पठन पाठन तथा उदात्त आत्मिक विचारों की ओर आर्य समाज ने समाज का पथ प्रशस्त किया है। तभी मनुष्य, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व की दुरावस्था को बचाया जा सकता है। इसी ज्ञान का अभाव ही समस्त बुराइयों का मूल कारण है। आर्य समाज के इन सिद्धान्तों पर चलकर ही मानव समाज पुनः सुख शान्ति तथा निर्भयता एवं आत्मबल को प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। यही आर्य समाज के आदेश एवं परामर्श ही इस युग को उच्चता की ओर ले जा सकते हैं। आर्य समाज वेद के इस मंत्र से मानव को सलाह देता है कि इस मंत्र में दिए गए शाश्वत नियमों का पालन करने से ही उत्थान हो सकता है। मन्त्र-

ओजश्च, तेजश्च सहश्च बलं च वाकम् च इन्द्रियश्च।
श्रीश्च धर्मश्च॥ (अथ० १२/५/७)

अर्थात् मानव को ओज, तेज, बल, सहिष्णुता, वाणी पर संयम, इन्द्रियों का निग्रह तथा ऐश्वर्य जैसे उदात्त एवं कार्यान्वित करने योग्य गुणों को धारण कर अपना एवं समाज का उत्थान करना चाहिए।

जहां धर्म है वहीं ओज है। अन्तः स्फुरण, प्रेरणा, प्रगति, उमंग, उत्साह तथा मन्यु है, वहीं तेज है, सहनशीलता है, धैर्य है और यही सहनशीलता तथा धैर्य नागरिकों को भयंकर आपदाओं में कभी विचलित नहीं करता। उत्तम आचरण से शरीर, मन, बुद्धि, हृदय और आत्मा का बल बढ़ता है। वाणी सुतीक्ष्ण और प्रभाववती होती है। इस प्रकार की वाणी व्यक्तित्व के उत्थान में योगदान देती है। उदात्त व्यवहार और उत्तम चरित्र जहां पर हैं वहीं जितेन्द्रियता है। इसी से सच्चा ऐश्वर्य मिलता है। इस ऐश्वर्य से जहां शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक बल मिलता है, वहां धन का कहीं अभाव नहीं होता। इन्हीं ऐश्वर्यों के द्वारा परिवार, समाज, राष्ट्र तथाा विश्व का उत्थान निश्चित है। आर्य समाज इन्हीं ऐश्वर्यों की उपलब्धि की ओर दिशा निर्देश करता है। संसार के वैभव को प्राप्त करने का यही मार्ग है। इसी से ही समाज को स्थायी और चिरंतन उत्थान की प्राप्ति होगी।

- When you are praying you are talking to God, when you are meditating God is talking to you.
- Tears in the form of tiny rivulets.
  Will never fill your oceanic expanse.
  What she always prayed.
- O! God! grant me a heart to accept things that cannot be changed, courage to change those that can be changed and wisdom to know the difference.

आधुनिकता की दौड़ और हमारी संस्कृति

आकाशवाणी की वार्ता

आज सारा संसार आधुनिक बनने, आधुनिक कहलाने को ही जीवन का उद्देश्य मान बैठा है। आधुनिकता है क्या? आज आधुनिकता का अर्थ, जो प्रायः लोग समझते हैं, वह है अपने को पाश्चात्य रंग में बिना सोचे, बिना समझे रंगा लेना। समाज के अधिकतर नर-नारी, बाल, वृद्ध इस आधुनिकता की दौड़ में पीछे भी नहीं रहना चाहते। यह आधुनिक बनने की निरुद्देश्य विचारधारा ने उन्हें अपने जीवन के मूल्यों से, अपनी स्वस्थ परम्पराओं से, अपनी संस्कृति से कोसों मील दूर कर दिया है। यदि आधुनिकता को भली भांति समझ लिया जाए और उसके उपयोगी रूप को अपनी संस्कृति के अनुरूप अपनाया जाए तो यही आधुनिकता, जो आज युवा पीढ़ी को पतन की ओर ले जा रही है, उसके लिए वरदान बन जाए।

आज आधुनिकता का अर्थ है मात्र मॉडर्न बनना अर्थात् फ़ैशन का अन्धानुकरण करना मात्र ही रह गया है। नारी जो समाज की निर्मात्री है, जन्मदात्री एवं संस्कारदायिनी है, वह भी इस लहर से अछूती नहीं रह पाई। इसका परिणाम है कि वह गृह साम्राज्ञी के अपने गौरवपूर्ण पद की गरिमा को भूलकर पाश्चात्य स्वातन्त्र्य की भूल भूलैयों में खो गई है। अपने कार्य क्षेत्र एवं कर्तव्य को भूल बैठी है। आज उसकी सभ्यता का मापदण्ड है क्लब व फैशन। उसका उद्देश्य है अपने को पूर्ण आधुनिका बनाना ताकि कोई उसे पिछड़ा या गंवारू न समझे। जिस समाज की निर्मात्री ही भटक जाएगी, वह समाज कैसा होगा, इसकी कल्पना मात्र ही बड़ी भयावह है। इसके विपरीत यदि हम आधुनिकता के सही अर्थ व उपयोगी स्वरूप को समझ कर आगे बढ़ें तो स्थिति बड़ी श्रेयस्कर होगी। मेरे विचार में आधुनिकता का अर्थ है बदलती हुई परिस्थितियों, बदलते हुए मापदण्ड, सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त वैज्ञानिक उन्नति को जीवन में वांछित स्थान देना है। अन्यथा विश्व में आज जो आधुनिक उन्नति की दौड़ चल रही है, उसमें हम पिछड़ जाएंगे, चाहे इसके विपरीत हम कितना ही फ़ैशन अपना लें, कितने मॉड बन जाएं, क्योंकि यह आधुनिकता नहीं प्रत्युत आधुनिकता के नाम पर चल रही अविवेकी नकल मात्र होगी। जो आधुनिकता हमारी गौरवपूर्ण संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखती है, उस पर कुठाराघात नहीं करती, उसे अपनाने में कहीं कोई हानि नहीं। किन्तु जब हम अपने जीवन मूल्यों को भुला बैठेंगे, जीवन में अन्ध विश्वासों से उभर नहीं पाएं, तो मात्र फ़ैशन कर लेने से हम आधुनिक नहीं बन सकते। वरन् आधुनिकता की इस दौड़ में अपना अस्तित्व ही खो बैठेंगे। आधुनिकता और संस्कृति के पारस्परिक संबंधों को समझने से पूर्व हम पहले विचार करके यह जान लें कि संस्कृति कहते किसे हैं? संस्कृति के वास्तविक अर्थ को जान लेने पर ही हम सन्तुलित ढंग से उसका गठबन्धन आधुनिकता से कर पाएंगे।

संस्कृति और सभ्यता को प्रायः पर्यायवाची शब्द ही माना जाता है। यही कारण

है कि हम संस्कृति की वास्तविकता से अनभिज्ञ रहते हुए उससे दूर ही दूर होते जा रहे हैं। संस्कृति सभ्यता से भिन्न है अथवा यूं भी कह सकते हैं कि विलोम है। संस्कृति से तात्पर्य है सामाजिक मानस और चेतना, जिसमें विचारों, प्रयोजनों और भावनाओं की संगठित समष्टि हुई हो। मनुष्य के लिए जो व्यक्तित्व है, वहीं समाज के लिए संस्कृति है। दोनों का सार है श्रेष्ठतम् चरित्र, आदर्शों और मूल्यों की भावना और ये समूचे जीवन को एक विशिष्ट प्रकार की एकता, स्वरूप और आकार प्रदान करते हैं। विचार, भावना, आचरण और कार्य के विभिन्न स्तरों से संस्कृति की भी सिद्धि होती है। हमारे मनोरंजन, धर्म एवं पूजा पद्धति, साहित्य, कला, पारस्परिक आदान प्रदान, व्यवहार, जीने के ढंग में प्रकृति की स्वाभाविक अभिव्यक्ति को संस्कृति कहते हैं। प्रसिद्ध विद्वान एवं विचारक श्री गोल्डन वीज़र ने तो संस्कृति के क्षेत्र को और भी विस्तार दिया है। व्यवहार, विचार, मान्यताएं, हमारे निर्णय, हमारी सभी राजनैतिक एवं वैधानिक तथा धार्मिक एवं आर्थिक संस्थाए, नैतिकता, आचरण की संहिताएं, हमारी पुस्तकें, मशीनें, विज्ञान, दर्शन व दार्शनिकता के साथ-साथ व्यक्ति तथा व्यक्तित्व के भीतर तथा पारस्परिक अनेकों अन्त: संबंधों को भी संस्कृति के क्षेत्र में ही सम्मिलित किया है। संस्कृति के इतने विस्तृत क्षेत्र पर यदि हम गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करें एवं आधुनिकता पर भी खुले हृदय व उत्कृष्ट मस्तिष्क से विचार करें तो पाते हैं कि यह संस्कृति की रक्षिका व पोषिका है, क्योंकि संस्कृति परिवर्तन और प्रगति पर निर्भर रहती है। जब तक किसी संस्कृति को उत्पन्न करने वाला वर्ग स्वयं प्रगतिशील रहता है तब तक ही उसकी संस्कृति प्रगतिशील रहती है।

कठिनाई तो यह है कि हम सभ्यता को ही संस्कृति मान बैठे हैं। सभ्यता के मापदण्ड बदलते रहते हैं। सभ्यता बिना परिवर्तन व हानि के बाहर से ग्रहण हो सकती है। राज्य बदलते हैं, वे सभ्यता को भी प्रभावित करते हैं और आज, तो संसार की परिधि मानो छोटी हो गई है। आवागमन के आधुनिक तीव्र से तीव्रतम होते साधनों ने विश्व को परस्पर और निकट ला दिया है। आज परस्पर प्रभाव से प्रभावित होना आवश्यक हो गया है। यही कारण है कि.''सादा जीवन उच्च विचार'' को महत्त्व देने वाला ''जगत् गुरु'' कहलाने वाला भारत भी भौतिक ऐश्वर्यों को सब कुछ मान बैठा है।

पाश्चात्य देशों की संस्कृति से प्रभावित होता आज का भारतीय अपने मूल्यों, अपनी मान्यताओं, अपनी नैतिकता, अपनी उच्च विचारशीलता को दकियानूसी मान उससे दूर होता जा रहा है। वह भारत जहां की विचारधारा थी-

अभिवादन शीलस्य, नित्य वृद्धोयसेविना।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते, आयुर्विद्या यशोबलम्।।

उसी भारत की उक्त विचारधारा रखने वाला पुत्र प्रात: अपने घर के अग्रजों के चरण स्पर्श कर आशीष पाता था। पर आज तो स्थिति इसके प्रतिकूल है और वह मात्र हाथ जोड़कर नमस्ते करने में भी लज्जा का अनुभव करता है। ''हाय पापा, हाय

ममी'' ही मानो उनके अभिवादन का ढंग रह गया है। आज का खान-पान, रहन-सहन, पहनना-ओढ़ना सबमें एक खलने वाली कृत्रिमता आ गई है। इस अन्धानुकरण में नारी भी पीछे नहीं रही क्योंकि उचित संस्कारों के अभाव में वह जननी भी इसे ही उचित मानकर आधुनिकता कहलाने की होड़ में आगे ही आगे रहने का लोभ संवरण नहीं कर पा रही है, क्योंकि वह यह नहीं जानती कि मॉड बनने की इस धुन ने उसे उसके वास्तविक कार्य क्षेत्र से बहुत दूर कर दिया है। वह भूल गई कि वह स्त्री है, आच्छादिका है, मातृ है, निर्मात्री है। आज अपने अंग प्रत्यंग की आहुति देकर जिस शिशु को वह जन्म देती है, उसे नौकरों व आया के हवाले करके ही अपने कर्तव्य की इतिश्री मान बैठी है। क्या इस प्रकार आधुनिकता हमारी संस्कृति के अनुरूप है? मां जो अपनी गोदी में लोरी देकर अपनी सन्तान को संस्कारित कर सकती है, वही मां अपने देश की संस्कृति एवं राष्ट्रीयता की रक्षा करने वाले शिवाजी, नेताजी, भगतसिंह एवं स्वा० दयानन्द जैसी सन्तान देश को प्रदान कर सकती है, क्योंकि वेद के शब्दों में वह धन्या है, सुधन्या है, माता है, जिसे अपनी संतान को स्थिर स्वभाव वाली, सुसंस्कृत, सुखदायिनी व राष्ट्रीय संस्कृति की पोषक व रक्षिका बनाना है। वेद में जिस पिता के लिए कहा गया है ''पितृ देवोभव'' क्या इस आधुनिकता की अविवेकी नकल को पनपाने व प्रश्रय देने वाला पिता सच्चे अर्थों में जनक के उत्तरदायित्वों को वहन कर पाएगा? वे पिता, जिनकी गौरव गाथाओं से हमारा इतिहास सुशोभित है, वैसे तपस्वी एवं त्यागी जीवन बिताकर अपनी सन्तान को अपनी संस्कृति के आदर्श प्रस्तुत करने वाले पिता आज के तथाकथित आधुनिकता के युग में कहां मिलेंगे? कारण ढूंढ़े तो स्पष्ट है कि आज हम अपनी संस्कृति से बहुत दूर हो चुके हैं, उसमें अपना विश्वास खो बैठे हैं क्योंकि उसे अपनाने पर तो हम स्वयं अपनी ही दृष्टि में दकियानूसी या गंवार बन जाते हैं। भूल बैठे हैं अपने जीवन के उन बहुमूल्य मूल्यों को जो भौतिक ऐश्वर्यों की अपेक्षा आध्यात्मिक ऐश्वर्यों को अधिक महत्व देते थे। जहां ऋषि, महात्मा और तपस्वियों का आसन सम्राट के सिंहासन से अधिक ऊँचा होता था, जहां ऋषि के आने पर स्वयं सम्राट द्वार पर उनका स्वागत कर अपने को धन्य मानता था। जहां योगीराज कृष्ण अपना सिंहासन छोड़ अपने बाल सखा एवं ब्राह्मण सुदामा का वैसा हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। कवि नरोत्तम के शब्दों में ''पानी परात को हाथ नहीं, नैनन के जल ते पग धोए।'' पर आज ऐसा कहां? कहां है वह संस्कृति, जो हमें स्वाध्यायशीलता, जीवन की नियमितता, पारस्परिक आदर, स्नेह व सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार, रंगभेद रहित राष्ट्रीयता की ओर अग्रसर होने के लिए अनुप्राणित करती हैं तथा प्राप्तव्य हेतु विचारधारा को उद्वेलित करती है, योग के अंगों का पालन करते हुए सदाचारी जीवन बिताने के लिए क्षमता प्रदान करती है? प्रसन्नता का विषय है कि आज तो पश्चिमी देशों के वासी, अनेक भौतिक ऐश्वर्यों से ही सन्तोष का अनुभव न करते हुए भारतीय संस्कृति की ओर आकृष्ट हो रहे हैं।

भौतिक ऐश्वर्यों में डूबे वहां के तथाकथित आधुनिक लोग अपने उस जीवन से निराश हो भारतीय योग की ओर बढ़ रहे हैं। यह बात भिन्न है कि उनके समक्ष अभी योग का सही रूप अपने महत्वपूर्ण अंगों सहित नहीं पहुँच पाया, किन्तु यह सत्य है कि आज का पाश्चात्य वर्ग हमारी संस्कृति व हमारे जीवन मूल्यों को मानने लगा है क्योंकि वह इसी अपने जीवन में शान्ति खोजने के लिए प्रयत्नशील है। इसके विपरीत वहां की भौतिकता की प्रवृत्ति भारत के जीवन में केवल प्रविष्ट ही नहीं हुई प्रत्युत काफ़ी गहराई तक घुस चुकी है। इस प्रवृत्ति के प्रभाव ने मानव को अधिक धनलोलुप तथा वैज्ञानिक सुविधाओं ने उसे प्रमादी व आलसी बना दिया है। वह दिन प्रतिदिन मानवता के प्रति उदासीन होता जा रहा है। इतना ही नहीं आज की इस पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित आधुनिकता ने यहां के पारिवारिक जीवन को भी प्रभावित किया है। आज परिवारों में जैसे-जैसे तथाकथित आधुनिकता का प्रवेश हो रहा है वैसे-वैसे परिवार टूट रहे हैं। परिवार के सदस्यों में पारस्परिक सौहार्द्र, वृद्धों व बड़ों के प्रति आदर व सेवा के भाव का लोप हो रहा है। आज घर के बड़े बूढ़े परिवार के लिए बोझ मात्र बनकर रह गए हैं और पग-पग पर उपेक्षा एवं तिरस्कार का व्यवहार पाकर अशान्ति का जीवन जीते दिखाई देते हैं। आज के जीवन में संगीत भी आध्यात्मिक शांति का प्रेरक नहीं, प्रत्युत विलासिता का उद्वेलक बनकर रह गया है।

प्रश्न उठता है कि क्या इन सबका कारण मात्र आधुनिकता की दौड़ है? नहीं, ऐसा नहीं, प्रत्युत कारण है सही दिशा निर्देश का अभाव। यदि हम आधुनिकता को सही अर्थों में समझने लगें, तदनुकूल जीवन के नैतिक मूल्यों को अक्षुण्ण रखते हुए आध्यात्मिकता को भी न भूलें एवं अपनी संस्कृति के सही स्वरूप को समझते हुए आधुनिकता को अपनाएं तो कहीं किंचित दोष नहीं। आधुनिक बनना श्रेयस्कर है यदि वह हमारी संस्कृति पर कुठाराघात न करे। ऐसी आधुनिक नारी जहां आधुनिकता के प्रत्येक विकास के अवसर का लाभ उठाकर अपना व अपने परिवार का चतुर्दिक विकास करने में सक्षम होगी वहां अपने सलोने शील एवं लज्जा के अद्वितीय आभूषण से अपने व्यक्तित्व को और निखारेगी। दूसरी ओर आधुनिक पुरुष वर्ग भी अपने पौरुष से दीप्तिमान होता हुआ परिवार के लिए, समाज के लिए, राष्ट्र के लिए और इससे भी आगे विश्व के लिए अग्रणी नेता होगा जिसका चरित्र, जिसके विचार, जिसकी प्रगति अनुकरणीय होंगी।

दोष आधुनिकता की दौड़ का नहीं और संस्कृति भी अपने स्थान पर गौरवपूर्ण है। दोष होगा तो उसको सही ढंग से समझने में होगा। आधुनिकता की दौड़ में यदि विचारहीनता से भाग लिया जायेगा तो यही आधुनिकता हमारे विनाश का कारण बन जाएगी और यदि इसके विपरीत आधुनिकता एवं संस्कृति का सुन्दर समन्वय होगा तो आधुनिकता व संस्कृति परस्पर पोषक व पूरक होंगी और इस समन्वय के कार्य का श्रीगणेश नारी जाति को ही करना होगा।

बालिका के समूचे विकास में सामाजिक परिवेश का महत्त्व

आकाशवाणी पर वार्ता

नारी के उत्थान के बिना मानव का उत्थान नहीं हो सकता। नारी मानव की जननी है। नारी के द्वारा ही मानव का विकास होता है। आज की बालिका कल की नारी है, आज की बालिका को कल की नारी में गौरवमय स्थान देना है। अतः बालिका का विकास आने वाले समाज के विकास के लिये आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है। बालिकाओं के विकास पर सम्पूर्ण राष्ट्र का विकास निर्भर करता है। नारी मानव सृष्टि की रचैय्यत्री और उसके संचालिका नारी ही है। निर्माता ने नारी को ब्रह्मा नियुक्त किया। आज की बालिका ने ही कल इस गुरुत्व कार्य के दायित्व को वहन करना है। जब तक स्त्री समाज पूर्णतयः उन्नत नहीं होता है तब तक मानव समाज भी उन्नत नहीं हो सकता तथा उसका विकास, समाज के विकास को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि समाज में नारी के सर्वांगीण विकास की समुचित व्यवस्था हो। जिस राष्ट्र की नारी आदर्श ब्रह्मा व एक उच्च शिक्षिका है, वही राष्ट्र गौरवमय बन सकता है। समाज के विकास के परिप्रेक्ष्य में यह जान लेना है कि बालिका के विकास का क्या तात्पर्य है? सम्पूर्ण विकास अर्थात् सर्वांगीण विकास जिसके अन्तर्गत उसका शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, नैतिक, चारित्रिक एवम् आत्मिक सभी प्रकार का विकास सम्मिलित है।

भारत के मध्य काल में ऐसी विचारधारा रही है कि स्त्री को कुल की सम्पत्ति माना जाता रहा है। उस समय यह भावना रही कि नारी के भीतर आत्मा या रूह न होने के कारण उनके साथ मान अपमान या आदर सत्कार या जैसा भी व्यवहार किया जाये उन्हें कोई अनुभव नहीं होता। अतः बालिकाओं के विकास के ऊपर कोई बल नहीं दिया गया। यह बहुत ही कम स्वीकार किया गया कि संसार में विद्या ज्ञान और सभ्यता संस्कृति को ऊँचा उठाने के लिये नारी भी पुरुषों की भांति बराबर भाग ले सकती है, क्योंकि पुरुषों में ईश्वर प्रदत्त शक्तियों की सम्भावना स्वीकार क़ी गई, परन्तु बालिकाओं में इस प्रकार की सम्भावनायें प्रायः नहीं मानी गईं। इस पुरुष प्रधान समाज ने कभी स्वीकार नहीं किया कि स्त्रियां भी विद्या विज्ञान सभ्यता और संस्कृति को आगे बढ़ाने में किसी प्रकार का हाथ बंटा सकती है या वकील, न्यायाधीश, सिपाही, सेनापति, एडमिरल, राष्ट्रपति या ऊँचे पदों को सुशोभित कर सकती हैं अथवा सब कुछ कर सकती हैं। अतः इस स्त्री समाज के निर्माण हेतु राष्ट्र की बालिकाओं को किसी प्रकार की सुविधा सहायता और उत्कृष्ट सामाजिक परिवेश की आवश्यकता को पहचाना ही नहीं गया।

वैदिक काल में स्थिति भिन्न थी। उस काल में बालिकाओं की भी बालकों के समान विद्या, विज्ञान सिखाकर उनके सर्वांगीण विकास की ओर पूर्ण ध्यान दिया जाता था। विद्या के साथ-साथ उन्हें पुरुषार्थी रहने व दैनिक शारीरिक व्यायाम करके

सुन्दर शारीरिक विकास की शिक्षा दी जाती थी। अथर्व वेद के चौदहवें काण्ड के प्रथम सूक्त में माता पिता को यह आदेश दिया गया हैं कि वे अपनी पुत्री को ज्ञान का दान दें। वेद के शब्द-

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरां अभ्यञ्जनम्।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्यापतिम्।। (अ० १४.१.६)

अर्थात् माता पिता अपनी पुत्री को दान तो दें पर कैसा? चित्तिरा अर्थात दिमागी शक्ति अथवा Intellectuality मिले। शृंगार के साधन पर 'चक्षु' अर्थात् गहराई से देखने की शक्ति (Power of observation), रुपये पैसे की जगह द्यौ लोक तथा पृथिवी लोक के बीच पड़ने वाले सारे जगत् का ज्ञान हो। अर्थात् माता पिता अपनी पुत्री को दान भी दें और वह दान हो ज्ञान का। वेद के इन शब्दों से स्पष्ट है कि-प्रत्येक बालिका को सब प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने चाहिएं। इसके साथ ही बड़ी सुन्दर, सुशील और स्वस्थ हो, सबला और वीरांगना हो। वह मधुर हासिनी के साथ-साथ सेवा विजिता, दया, सकुमारिता व दीर्घ भव्य मनोहारिणी भी हो। वह अमृता सत्ता हो पर संकट आने पर वह पैनी कटारी भी हो। यह आनन्द की वृष्टि करने वाली हो। राष्ट्र, धर्म, मान-मर्यादा और सतीत्व रक्षा के लिए शरों की वर्षा करने के लिए भी समर्थ हो। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक बालिका को अपने सम्पूर्ण गुणों के विकास का अवसर मिले। अनुकूल वातावरण और वांछित सामाजिक परिवेश भी मिले।

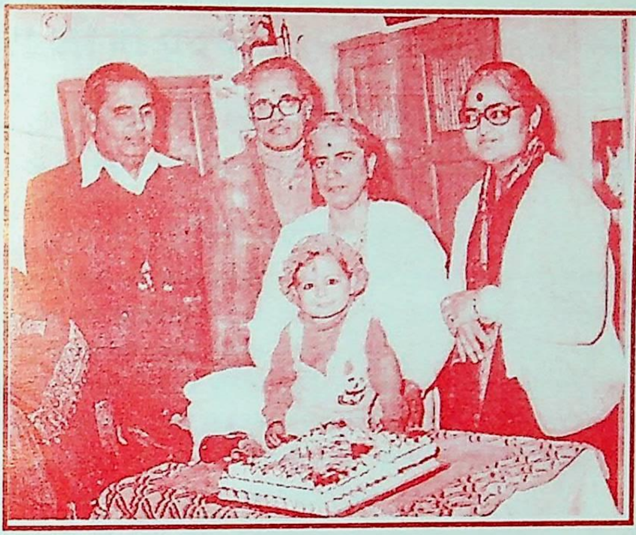
समाज की जिस इकाई से बालिका विकसित होती है वह है परिवार। इस परिवार में वह जन्म लेती है, बढ़ती है, विकसित होती है, यही वह आधारशिला है, जिस पर उस बालिका के जीवन की साध निर्मित होती है। यदि बालिका के विकास हेतु मानसिक परिवेश प्राप्त होता है तो वह सर्वांगीण विकास को प्राप्त होती हुई कवि की भांति विकसित होकर पुष्प की भांति खिल उठती है और अपने प्रभु प्रदत्त गुणों का विकास करके समाज का एक शोभन तत्व बनेगी, जिससे विश्व वाटिका सदा खिलती और महकती रहेगी। उसके कण-कण में शोभनीयता व समाकर्षण का संचार होगा। वह आत्म गौरव और आत्म लाज से परिपूर्ण होगी। उसमें वह शक्ति आयेगी जिससे वह तूफानों से भी टक्कर लेकर धर्म की रक्षा क़र पायेगी। वह ऐसी श्रद्धा के रूप में विकसित होगी कि झुलसती हुई तपन व धधकते हुये दहन में भी मानवता के युद्ध में पीछे नहीं रहेगी। वह जीवन के सनातन मूल्यों को, सभ्यता-संस्कृति के मूल्यों को कभी नहीं गिरने देगी। वह नवीन से नवीनतम् होते हुये भी प्राचीनतम् से अपना नाता जोड़े रहेगी। वर्तमान में रहते हुए अतीत को बरतती रहेगी। वर्तमान और भविष्य में जागती रहेगी। भविष्य में रहकर भी अतीत को नहीं भूलेगी। पर कब, जब इसको अपने परिवार में अपने विकास के लिये अनुकूल वातावरण मिलेगा। विकास हेतु उचित संस्कार मिलेंगे। घर में एक स्वर्गिक सहयोग मिलेगा, जहां पर पाश्चात्य सभ्यता की भोण्डी नकल नहीं होगी, अपितु जहां अपने गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने का व्यावाहरिक प्रशिक्षण मिलेगा, अपनी गौरवमयी संस्कृति की सीख मिलेगी और हर प्रकार से शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, आत्मिक व चारित्रिक उत्थान का

सुअवसर मिलेगा। ऐसे परिवारों में बालिकायें ही वास्तव में समाज की निधि होंगी।

सामाजिक परिवेश में परिवार के बाद शिक्षा संस्था का स्थान है। बालिकाओं के विकास में विद्यालयों की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं। विद्यालय का कार्य है कि शिक्षा की व्यवस्था करना। शिक्षा का उद्देश्य है शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास करना। बालिका के पूर्ण विकास को दृष्टि में रखते हुये विद्यालय के पाठ्यक्रम में पाठ्येतर क्रियाओं अर्थात् Co-curricular activities का भी महत्वपूर्ण स्थान है, जहां बौद्धिक एवम् रचनात्मक विकास हेतु बालिकाओं को विभिन्न विषयों का ज्ञान दिया जाता है। उनके शारीरिक विकास हेतु अनेक क्रीड़ाओं, रैलियों व अनेक प्रतियोगिताओं व प्रशिक्षणों की व्यवस्था आज अनिवार्य मानी जाती है। इनकी तर्क शक्ति, विचार अभिव्यक्ति की ओर सजग रहते हुये समाज की द्वितीय महत्वपूर्ण इकाई सिद्ध होती है। विद्यालय बालिकाओं के विकास हेतु उपयुक्त अवसर प्रदान कर अपने उत्तरदायित्व का वहन करता है। आज मनोविज्ञान एवम् सात्विक वृत्ति से यह स्वीकार कर लिया गया है कि समाज बालिकाओं की शिक्षा उसकी रुचि और आवश्यकता के अनुकूल करे जिससे बालिका अपने भावी जीवन में सम्राज्ञी बन सके। इसे राष्ट्र को एक समुन्नत और सुसंस्कृत संतान देनी है। अतः उसकी शिक्षा की व्यवस्था भी तदानुकूल होनी चाहिए। लोगों की सम्मति में भी उसे सब प्रकार के ज्ञान प्राप्त कर लेने चाहिएं ताकि इनका उपयोग अपने जीवन में वह कर सके। समाज में ऐसी व्यवस्था भी होनी चाहिए कि बालिका स्वावलम्बी बने अर्थात् वह ऐसी शिक्षा प्राप्त करे जो जीवन यापन के लिये उपयोगी हो। स्वावलम्बन के साथ उसमें आत्म विश्वास की भावना जागृत होगी। हीन भावना से रहित और आत्म विश्वास से पूरित व्यक्ति प्रत्येक दिशा में वांछित प्रगति कर सकता है। अतः समाज का दायित्व है कि वह बालिकाओं के लिये ऐसा परिवेश प्रस्तुत करे जिसमें वह अपनी रुचि एवं आवश्यकता अनुसार अपना सर्वांगीण विकास करती हुई समाज का एक उपयोगी अंग बन सके। सामाजिक परिवेश ही नारी को यथोचित आदर व सम्मानजनक एवं गौरवमय स्थान प्रदान कर सकता है। इसको वेद ने पुष्टित किया है:

"अमो अहम् अस्मि तात्वम् ताम् अहम् वृक्तम्"

तात्पर्य-मैं ज्ञानवान हूं, तूभी ज्ञानवती है। मैं सामवेद हूं तो तू ऋग्वेद है। इससे स्पष्ट है कि यदि समाज बालिका को यथोचित स्नेह के साथ उन्नति का अवसर देगा अथवा प्रदान करेगा तो वह अपना सर्वांगीण विकास करती हुई जहां आत्मविश्वास का जीवन जीएगी वहां वह उस समाज की अमूल्य निधि होगी। समाज, राष्ट्र का कल्याण करने वाली होगी। अपने सद्ज्ञान के छीटों से वह उन्नति की अग्नि को शांत कर एक श्रेष्ठ मानव का निर्माण कर सकेगी। यदि समाज उसे यथा उचित परिवेश देगा, उन्नति का स्वस्थ वातावरण देगा तो प्रत्येक बालिका सुविकसित होकर उसी समाज को सुसंस्कृत बनायेगी। समाज को श्रेष्ठ संस्कार व प्रेरणा व दिशा देगी। वह राष्ट्र के स्वस्थ, समुन्नत, सुसंस्कृत व सुयोग्य संतान देगी। वह राष्ट्र को सुरक्षित एवं सुविकसित करते हुए अपनी संस्कृति की गरिमा को अक्षुण्य बनाये रखेगी।



पति-देवर-भाभी के साथ दोहते के जन्मदिन पर



दोहते के जन्मदिन पर मीठे का रसास्वादन कराते हुए

प्रकाश जी के प्रवचनों एवम् विचार विनिमय के आधरभूत कुछ कथानक

(१) जब अहंकार धुल गया

राजकुमार वीरव्रत को ब्रहमज्ञान हेतु माता-पिता ने महर्षि ऐलूष के आश्रम में भेजा। महर्षि ने राजकुमार को छात्रावास में सभी के समान एक सामान्य कक्ष में निवास हेतु भेज दिया। राजकुमार पहली बार अपना सामान उठाकर ऐसे निवास में ठहरे जो उनके नौकरों से भी तुच्छ था। सादा भोजन लिया न लेने के तुल्य। मस्तिष्क में विचार आने लगे। ऐसा शुष्क जीवन कभी नहीं देखा था। अरुचि होना स्वाभाविक था। शयन से पूर्व एक अन्य स्नातक को बुलाकर पूछा तात! आप कहां से आये है? पिता क्या करते है? कितने वर्षो से इस आश्रम में हैं? क्या सिद्धि मिली? क्या ईश्वर साक्षात्कार हुआ?

इस प्रश्नशैली पर हंसी आना स्वाभाविक था, तो उस स्नातक ने उत्तर दिया-मैं उपकौशल का राजकुमार हूँ। समापन वर्ष है। तेजस्वी ललाट देखकर आश्चर्य हुआ, तब वह स्नातक महर्षि ऐलूष की ओर चला गया। वीरव्रत कर्तव्य विमूढ हो गया। सोचा सब इतनी साधारण वेशभूषा में मौनव्रत धारी अनुशासित क्या इच्छायें कुछ भी नहीं हैं? इसी उधेड़ भुन में नींद लग गई। प्रातः दो घड़ी पूर्व हलचल में उठे। शरीर कुछ हल्का हो चुका था। निवृत्त हुआ। प्रातःकालीन वन्दन में बैठ गया। प्रथम दिन था ध्यान तो नहीं जमा परन्तु चिन्तन में एक बात समझ में आई कि देह नश्वर है। जीवन के दृश्यमान नश्वर हैं, क्षणिक हैं, उस अव्यक्त आत्मा को पाने के लिये अहम् छोड़ना पड़ेगा। अहं बार-बार शिकंजे में जकड़ता है। विचार करने की कला सीखी पर अहमभाव के कारण कभी स्नातकों से झगड़ा करता और कभी शिक्षकों से दुराग्रह करता। जब विचार तुला पर तोलता विराट जीवन की तुलना में एक छोटी इकाई का अहंकार तिरोहित हो जाता।

शिक्षा का क्रम चलता रहा। अन्तर परिवर्तित परिष्कृत विकसित होता गया। दृष्टिकोण उदार हो चला व्यक्तित्व विकसित होता गया परन्तु अभी अपरिपक्वता छायी थी।

आश्रम नियमानुसार ब्रह्मचारियों को भिक्षाटन के लिये भेजते रहते थे। सन्यासियों के लिये भोजन लाना पड़ता था। और कोई भिक्षा नहीं मांग सकता था। अहंकार निवृत्ति हेतु भिक्षा का मांगना आवश्यक था। वीरव्रत को आदेश मिला फिर प्रसुप्त अहं जागा। अपने को दबाना पड़ा।

भिखारी वीरव्रत चले। ग्राम में गये। लज्जा का अनुभव हो रहा था। ग्राम प्रमुख की कन्या विद्या ने वीरव्रत का संकोच पहचाना, और धान्य भूमि पर गिरा दिया। वीरव्रत बोले-भद्रे! जान बूझकर धान्य नीचे गिराना था तो इसें लाई क्यों थीं? विद्या ने हंसकर उत्तर दिया। सारा संसार ऐसा करता है, जो उद्देश्य है उसे पूरा करने में संकोच का भारीपन है। यह भी धान्य गिराने जैसा अपराध है। आंखे खुल गई। लक्ष्य प्राप्ति हेतु दृढ़ता आवश्यक है।

लज्जा व अहम् धुल गया। प्रसन्नतापूर्वक भिक्षाटन के लिये आगे बढ़ गये। शांति मिली। निर्मल, स्वच्छ धुला हुआ, शान्त, सन्तुष्ट हल्कापन अनुभव कर रहे थे वीरव्रत।

(२) बुद्ध की खेती

महात्मा बुद्ध काशी में एक सम्पन्न किसान के पास भिक्षा मांगी। किसान ने व्यंग कसा-मैं परिश्रम से खेत जोतता, बोता हूँ-तब फसल मिलती है, पेट पूजा होती है-आप बिना खेती किये भोजन पाना चाहते हैं? बुद्ध-मैं भी तो किसान हूं। प्रश्न- कैसी खेती? मैं आत्मा की खेती करता हूं। ज्ञान के हल से श्रद्धा के बीज बोता हूँ, तपस्या के जल से सींचता हूं। मेरी खेती के उपकरण मेरी विनय, विचारशीलता और मन हैं। मैं उस गन्तव्य की ओर जा रहा हूं जहां न दु:ख है न सन्ताप। इस खेती की अनवरत फसल लहलहाती है, कार्य करने की प्रेरणा देती है।

(३) आत्मा के आदेशों का निरादर

एक बार एक सेठ ने एक सन्यासी से यह कह कर अपने घर में आमंत्रित किया कि महाराज आपने राजाओं महाराजाओं, बड़े सेठों का आतिथ्य ग्रहण किया है, चार दिन मेरे निवास पर भी आतिथ्य स्वीकार कीजिये। संन्यासी ने स्वीकृति दे दी। सेठ रथ में बिठाकर अपने महल में ले गया। बढ़िया कमरे में ठहराया। कक्ष को सजाने संवारने में सारा परिवार, नौकर चाकर चारों दिन लगे रहे। मखमली गद्दे, गलीचा और रेशम की चादरे बिछा दीं। अतिथि को उन पर आसीन कराया। सेठ जी सांय भोजन आदि से निवृत्त होते और फिर कक्ष के आन्तरिक भाग को सजाने में लग जाते और सो जाते। किसी ने भोजन तक नहीं पूछा। दिन निकलते ही स्नान आदि से निवृत्त होकर प्रात:राश कर सेठ जी फिर संन्यासी जी के कक्ष की सफाई और सजावट में लग जाते। अतिथि को न तो प्रात:राश और न भोजन कराने की किसी को सुध रहती। चार दिन के बाद सेठ एवम परिवार हाथ जोड़कर बोले-हम ने रात दिन आपकी सेवा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यदि कोई कमी रह गई हो तो क्षमा कीजियेगा।

अतिथि ने मुस्कराते हुए कहा भोले लोगो यह भी कोई आतिथ्य है! तुम भले ही एक साधारण कुटी में एक चटाई पर ठहरा देते, किन्तु मुझे समय पर भोजन कराते और समय पर मेरा उपदेश सुनकर आत्म लाभ उठाते तो मेरा सच्चा आतिथ्य होता, मेरा आतिथ्य तो हुआ ही नहीं।

· यही अवस्था मानव शरीर में स्थित इन्द्र आत्मा रूपी अतिथि की हो रही है। जीवन की पूरी आयु अतिथि हृदयासन पर निराहार स्थित रहता है, अपने विषयों के भोगने में और देह को सजाने में सारी आयु बिता दी। अतिथि से न तो कोई बात होती है, न कोई बात सुनी जाती है। जब ऐसे में आत्मा देह को छोड़ जाता है तो भूखा प्यासा और तिरस्कृत होकर जाता है।

(४) अपमान भी एक मृत्यु है

मृत्यु के कई प्रकार होते हैं किसी को अपमानित करना भी एक मृत्यु है। जो कोई अपमान जनक कार्य करता है और पश्चाताप करता है वह भी एक प्रकार की मृत्यु है।

महाभारत के युद्ध में एक स्थल पर अर्जुन ने एक प्रतिज्ञा की थी कि जो व्यक्ति मेरे गाण्डीव धनुष के प्रति अपमान जनक बात कहेगा, मैं उस को मृत्यु का दण्ड दूंगा।

युद्ध में एक बार बहुत सारे सैनिक मारे गये तो युधिष्ठिर ने अर्जुन से कह दिया कि

तुम्हारा गाण्डीव बड़ा निकम्मा निकला और बेकार रहा, जिसके होते हुये हमारे ढेरों सैनिक मारे गये। अर्जुन के लिये यह बात असह लगी। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बदला लेने के इरादे से अपने भाई युधिष्ठिर को मारने के लिये उद्यत हुआ। पास में कृष्ण जी खड़े थे। उन्होंने सोचा कि यदि ऐसा हो गया तो अनर्थ हो जायेगा। उन्हें एक युक्ति सूझी।

श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को और उत्तेजित किया। फलस्वरूप अर्जुन ने पहले अपने भाई को बड़े कड़वे शब्दों से अपमानित किया, बुरा भला कहा। फिर जब भाई को मारने लगा तो श्रीकृष्ण जी ने कहा हे अर्जुन! तुम्हारी प्रतिज्ञा तो पूरी हो चुकी है। अब वध करने की आवश्यकता नहीं। जिस को अपमानित किया जाए उसकी तो स्वतः मृत्यु हो जाती है। तुमने युधिष्ठिर को अच्छे ढंग से अपमानित कर दिया। उसकी तो एक प्रकार से मृत्यु हो गई। अर्जुन शान्त हो गया।

(५) परिश्रम का आनन्द

राजा अशोक कलिंग के युद्ध को जीत तो लिया परन्तु वह बहुत दुःखी इस बात से थे कि चहुं ओर उन्होंने मृत्यु ग्रस्त सैनिकों के देखा। उन्हें पश्चाताप हुआ। राजा अपने काम में जुट गये। कुछ दिनों के बाद उनके राज्य में महात्मा बुद्ध पधारे। एक बाग़ में डेरा डाला। वहीं पर अपने प्रवचनों का क्रम प्रारम्भ किया। अशोक ने देखा कि सब लोग बुद्ध के प्रवचनों में भागे चले जा रहे है। अशोक ने लोगों को आकर्षित करने के लिये बहुत बड़ा समारोह किया और मनोरंजन के सब साधन जुटाये परन्तु लोग आकर्षित न हो पाये। एक दिन अशोक स्वयं बाटिका में पहुंचे और भोजन के लिए महात्मा बुद्ध को महल में आमंत्रित किया। महात्मा बुद्ध पधारे। अशोक ने अपने प्रासाद को दिखाया और फिर हीरे जवाहरात के कक्ष में ले गये और सब कुछ दिखाया। अन्त में बुद्ध ने पूछा-राजन्! इन से तो आपकी बड़ी आय होती होगी। राजा ने उत्तर दिया, आय तो नहीं होती हाँ! इस की देखरेख और सावधानी के लिये चौकीदारों और सिपाहियों पर व्यय होता है।

महात्मा बुद्ध ने कहा राजन! मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें एक और प्रकार का ख़ज़ाना दिखाऊं। राजा चल दिये। कुछ गलियों में बुद्ध राजा को ले गये। राजा ने दिल में सोचा कि महात्मा जी न जाने कहां ले जा रहे हैं? क्रोध भी आ रहा था। बुद्ध एक टूटे फूटे घर में राजा को ले गये। वहां पर एक महिला चक्की से आटा पीस रही थी। महात्मा बुद्ध ने कहा-यह वह ख़ज़ाना है जिस में कोई व्यय नहीं करना पड़ता। इस परिश्रम से जो शांति की रेखायें महिला के मुख पर दिखायी देती हैं, वह राजन! आप पर नहीं देखीं। राजा सम्भले और वैराग्य का दामन पकड़ा।

(६) छान्दोग्य उपनिषद की कथा

दानी न्यायकारी, सत्यवाणी प्रजावत्सल सब कुछ वे थे। दुधारू गाय दानकर भोजन करते थे। दानशीलता उच्चतम थी, परन्तु सब कुछ होते हुये शांति नहीं थी। आत्म संतोष नहीं था। सोचते-असंख्य लोगों को दान देता हूं, मेरे समान कोई दयालु, उदार, दानशील शासक नहीं। यही भावना चिन्तित करती रहती कि कोई मुझ से अधिक दानशील व कृपालु तो नहीं। इसी से ईर्ष्या, बेचैनी रहती थी। एक दिन भेष बदल कर भ्रमण कर रहे थे कि दो व्यक्ति निकले। उन्हें कहते हुये सुना एक बोला- राजा के राज्य में हम कितने सुखी हैं अथवा नहीं, चिन्ता

नहीं। तीन लोकों में जानश्रुति की कीर्ति फैल रही है। दूसरा बोला-यह तो ठीक है पर राजा अशान्त हैं। उससे गाड़ी वान रैक्व कहीं अधिक उत्तम है। उसके पास शांति का भूषण है। उसका पुण्य जानश्रुति से कहीं अधिक हैं। यह सुन जनश्रुति का अहम् व विवेक उन्हें झकझोरने लगा। हृदय में अपने प्रति हीन भाव जागे। आत्मा तड़प उठी और रैक्व को मिलने की इच्छा तीव्र हो उठी। यद्यपि आत्म प्रशंसा की दुर्बलता थी पर नृपति में ज्ञान के प्रति असीम अभीक्षा थी। रैक्व का पता लगाया गया। दुधारू गाय, हीरे, धन, अश्व सहित रथ लेकर आश्रम पहुंचे।

रैक्व को राजा ने प्रणाम किया। आशीष मिला। राजा विनम्रता से बोले-कृपया यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें। रैक्व हंसे। तुम ज्ञान पिपासा एवं शांति हेतु आये तो इन की क्या आवश्यकता थी? इन्हें लेकर मै क्या करूंगा? जिज्ञासा के लिये आ जाना ही पर्याप्त है। अभी जाओ जब इन वस्तुओं की सारहीनता का बोध हो जाये तो चले आना, मेरे पास, जो है सब जिज्ञासुओं के लिये है।

हतप्रभ हो जानश्रुति चले गये। नींद नहीं आई। निर्धन गाड़ीवान की विरक्ति का गहरा प्रभाव पड़ा, कुछ नहीं लिया। राजा का अस्तित्व सारहीन हो चला। परन्तु रैक्व के प्रति श्रद्धा के भाव थे। प्रातः अपने चारकों को विदा किया। उद्विग्नता चरम सीमा पर थी। रैक्व से मिलने की इच्छा तीव्र थी। उन्हें याद हुआ कि रैक्व सैंकड़ों की चिन्ताएं, समस्याएं सुलझा कर उन्हें उल्लास से भरकर भेजते थे। खाये पिये बिना जनश्रुति चल पड़े रैक्व से मिलने अकेले। रैक्व ने उनकी श्रद्धा देखी, प्रसन्न हुए, बोले-राजन! आपने शांति का राज मार्ग पा लिया है। राजा बोले-अभी कहां पाया है? आपकी कृपा से शीतलता के कुछ छींटे पड़ जायें तो पा लेना समझेंगे। रैक्व-राजन्! कोई कार्य निरर्थक नहीं। अब तक दान आदि श्रेष्ठ कार्य किये यश हेतु और पाया। राजा-पर आत्मा की शांति नहीं मिली। मैं सब छोड़ने को तैयार हूं, मुझे सन्तोष चाहिये। रैक्व स्नेह में बोले-अधीर नहीं बनो। सब करो, आसक्ति को त्यागने से काम चल जायेगा। राज्य करो सेवक बनकर, दान करो प्रभु का समझकर। अपने को कर्ता नहीं माध्यम समझो। आत्मा की शांति आत्मा में छिपी है, उसे जागृत करो। राजा लौटे, बोझ हल्का हो गया प्रतीत हुआ। अंधकार छिन्न-भिन्न हो गया। प्रतीत हुआ पहाड़ियों का जल हृदय में भर आया है। जीवन में परिवर्तन आया। तृप्ति, सन्तोष, शांति आ गई। ऐसे व्यक्तित्व ही प्रजापति की प्रजा बन सकते हैं। उसका प्यार पा सकते हैं। शांति और संतोष उनके जीवन का धन बन जाता है और प्रजापति उनकीं सभी श्रेष्ठ कामनाओं को पूर्ण करते हैं।

परम प्रभु की दूरी तो बस अनन्त है,
पर उदारता उसकी तन में बसा प्राण बन।

(७) कांटे के बदले फूल

हज़रत अली के पास एक नौकर था। किसी बात पर नाराज होकर नौकर छोड़कर चला गया। हज़रत मस्जिद में नमाज़ पढ़ने गये। नौकर चुपचाप पहुंचा और तलवार से हज़रत पर वार किया। चोट आई खून बहा, लोग सेवा करने लगे। कुछ ने दौड़ कर नौकर को पकड़ लिया। हज़रत के सामने प्रस्तुत किया। हज़रत ने प्यास के कारण पानी मांगा। शरबत आया और पेश किया तो हज़रत बोले (नौकर की ओर इशारा करके) मुझे नहीं पहले उसे पिलाओ। देखते नहीं बेचारा कितना थक गया है। कैसे हांप रहा है? लोगों ने गिलास नौकर को दे दिया।

आंखों में आंसू आ गये।

हज़रत ने प्यार से कहा-भाई रो मत, ग़लती सब से हो जाती है, शरबत पीले। नौकर पैरों पर गिर गया और अपने कुकृत्य पर पछताया। हज़रत ने उसके सिर पर हाथ फेरा। जो ग़ल्ती समझकर सुधार लेता है, वह तो जीवन में उठ जाता है।

(८) आम्रपाली में परिवर्तन

आज नगरवधू गलियों में चली आ रही थी। लोग आश्चर्यचकित और स्तब्ध थे। जिसको मिलने के लिये गणपति और राज्याधिकारी को महीनों प्रतीक्षा करना पड़े वही आज इस तरह तेजी स चली जा रही थी, किसी को विश्वास नहीं हो रहा था। शान्त भाव था उसका, परन्तु इस शांति के पीछे कितनी वेदना छिपी थी? फुसफुसाहट प्रारम्भ हुई। सुना है अब पूजा पाठ करने लगी है। क्या बबूल में भी कमल के फूल निकलते हैं? उसने भी यह वाक्य सुने, सुनकर उसे लगा जैसे उसके अस्तित्व पर ढेरों अंगारे उछाल दिये हों। नगर वधू के समय का सभागार आंखों के समक्ष घूम गया। किसने बनाया उसे हेय, कलुषित मार्ग पर उसे किसने डाला? उनमें थे पुरोहित, शासक, व्यापारी, विचारक यह उत्तरदायी थे और पक्षधर थे अव्यवस्था के। मन में वह हंसी, पर अगले पल सम्भल गई। राजोद्यान के बाहर द्वार पर ठिठक गई। विचार आने लगे। भिक्षु संघ के अधिष्ठाता और नगर वधू इन दो किनारों के बीच की दूरी का अनुमान लगाना सहज था।

तभी आनन्द नाम के भिक्षु दिखायी दिये। विनम्रता से कहा-मैं महात्मा बुद्ध के दर्शन के लिये आई हूँ। नगर वधू का ऐसे आना आश्चर्यजनक था।

आओ देवी! खड़े होकर बुद्ध ने स्वागत किया। आम्रपाली के आंसुओं से समूचा अस्तित्व भीग गया। कहा-प्रभु मैं अपने जीवन से उकता गई हूं। क्या कभी इस नरक से मेरा उद्धार भी होगा?

''न पाप का जीवन और नरक ऐसा मत कहो और सोचो। तुम्हारे भीतर देवता का निवास है। यह पाप का जीवन तो विकृत समाज व व्यक्ति की देन है। बाहरी शक्ति की अपेक्षा भीतर की शक्ति बलशाली होती है। भीतर का देवता ही उद्धार कर सकता है। देवता उतना ही बड़ा होता है जितना बड़ा उसे उपासक बनाना चाहता है, उसे ही प्रमाण मानो। लोगो के कहे की परवाह मत करो।'' वह सोचने लगी। फिर कहना प्रारम्भ किया-प्रभु! मैं तो बहुत पापिन हूं। ''देवी! जागृत जन ही समाज को नई व्यवस्था देते हैं। जीवन की अजस्र शक्तियों का नियोजन यही करते हैं।'' बुद्ध ने समाधान दिया। आम्रपाली इस नूतन तथ्य की अनुभूति कर रही थी। अगला पल अडिग निश्चय का पल था। धर्म चक्र के प्रवर्तक के चरणों में सर्व समर्पण का अर्थ खोना व मिटना नहीं। खोती और मिटती तो तुच्छता और क्षुद्रता है। आम्रपाली को नया जन्म, नया जीवन, नयी यात्रा मिली। उसका कायाकल्प हो गया।

(९) सफलता का श्रेय किसे मिले?

इस प्रश्न का विवाद उठ खड़ा हुआ। संकल्प, बल व बुद्धि में। तीनों ने अपने को महत्वपूर्ण बताया। अपनी-अपनी बात पर अड़े थे। तय हुआ विवेक को पञ्च बनाकर झगड़े का निर्णय किया जाये।

तीनों को साथ ले विवेक चल पड़ा हाथ में लोहे की टेढी मेढी कील व हथोड़ा लेकर।

ऐसे स्थान पर पहुंचे जहां सुन्दर बालक खेल रहा था। विवेक बोले- बालक! अगर यह कील सीधी कर दो तो इनाम मिलेगा। बालक की आंखें चमक गईं। आशा व उत्साह से प्रयत्न करने लगा पर हथोड़ा ही नहीं उठा। हाथों में बल ही नहीं था। खिन्न होकर हथौड़ा रख दिया।

विवेक बोले सफलता के लिये अकेला संकल्प अपर्याप्त है। चारों आगे बढ़े। मज़दूर पेड़ के नीचे सो रहा था। विवेक ने झखझोड़कर जगाया और भरपूर पारिश्रमिक का आश्वासन दिया। उनोंदी आंखों में कुछ प्रयत्न भी किया पर खुमारी बनी रही। हथौड़ा रखकर कहा-मुझे नहीं चाहिये पारिश्रमिक और खर्रान्टे मारने लगा। विवेक बोला अकेला बल भी पर्याप्त नहीं। सामर्थ्य हो पर संकल्प न हो तो कार्य की सफलता सम्भव नहीं। आगे बढ़े एक कलाकार आता दिखायी दिया। विवेक ने उसे कील सीधा करने की पेशकश की ओर अशर्फी भेंट देने का आश्वासन दिया। कलाकार ने तुरंत रेतीली ज़मीन पर कील रख हथौड़े से चोट मारी। धमाके से धूल उड़ी। सब की आंखे रेत से भर गई। कलाकार हथौड़ा पटक कर चल दिया। विवेक लौट चले। समाधान हो गया। संकल्प बल और बुद्धि सब सम्मिलित रूप से ही सफलता का श्रेय प्राप्त कर सकते हैं। एकाकी में तीनों अपूर्ण और अधूरे हैं।

(१०) विद्वान वानप्रस्थी की शिक्षा

आचार्य धर्म घोष परिव्राजक भ्रमण करते हुए एक गांव से गुज़रे तो वहीं वर्षा ऋतु की पहली वर्षा हो गई। चातुर मास था। गांव के नायक से बोले, 'क्षुद्रमति' चातुर मास है, आगे जाना कठिन है। विश्राम करना होगा। कष्ट तो नहीं होगा? 'आर्य श्रेष्ठ! कष्ट तो नहीं होगा? पर संकोच से निवेदन है कि यह गांव दस्युओं का है। आप कृपया इनको उपदेश न करें वरना मति बिगड़ जायेगी। - तथास्तु कहा आचार्य ने।

समय समाप्त हुआ। सीमा तक क्षुद्रमति व ग्रामीण छोड़ने आये। आचार्यश्री आत्मविभोर हुए। आंखों में अश्रुभर कर क्षुद्रमति से गले मिलकर कहा अब मैं तुम्हारी सीमा से बाहर हूं। कर्ज़ चुकाऊंगा और एक उपदेश दूंगा जो गांठ बांध लो। क्षुद्रमति- अवश्य दें। आचार्य बोले-आज से व्रत लो कि सूर्यास्त के बाद कुछ नहीं खाओगे। रात्रि के भोजन को हिंसा कहा गया है। आचार्य जी को विदा कर सब घर लौट आये।

एक दिन क्षुद्रमति ने कुछ साथियों के साथ एक डकैती डाली। काफ़ी धन लूटा। रात हो गई। एक जगह विश्राम हुआ। दो दस्यु खाने-पीने की सामग्री लेने चले गये। उनके मन में पाप आया। सुरापान और सामग्री में विष मिला दिया। वे लौटे। पीना और खाना शुरू किया। अचानक क्षुद्रमति को आचार्य जी का उपदेश याद आया। विष के प्रभाव से सभी मर गये परन्तु क्षुद्रमति बच गया। समझ गया-जीवन उपदेश के कारण बचा। विचारा ''क्यों न धर्म का मार्ग लिया जाए है?'' बुद्धि पल्टी। कृषि करने लगा। धर्म की एक किरन से सुख शांति के प्रकाश पुंज से जीवन आच्छादित हो गया।

(११) अहम् का निराकरण

१. अपने प्रवचनों एवम् विचारों में प्रायः वह एक बड़ी ही रोचक कथानक दिया करती थीं। महाराजा अम्ब्रीश तप-तितिक्षा पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। युवक थे फिर भी पूजा पाठ में अतुल्य आस्था थी। महल में ही बने भगवान् विष्णु के मन्दिर में उषा काल में अर्चना, सन्ध्या, उपासना हेतु जाया करते थे। दीन-दुखियों को दान में स्वर्ण मुद्रायें देते थे। नित्य स्वाध्याय करते। राज्य की समस्याओं के निराकरण हेतु मन्त्रि परिषद् से परामर्श भी करते।

नागरिकों की कठिनाइयों को श्रवण-निवारण करके तब कहीं भोजन करते। जीवन बड़ा कष्टमय परन्तु इसी में सुख की अनुभूति होती थी।

अवन्ति नरेश ने अपनी पुत्री उदायनी के विवाह का प्रस्ताव किया। उत्तर दिया कि मेरे ऐसे कष्टमय जीवन में उदायनी को कष्ट होगा। परन्तु अवन्ति नरेश ने प्रत्युत्तर में कहा कि उदायनी स्वयं भक्ति-सेवा-तप-तितिक्षा में रुचि रखती है और यह प्रस्ताव भी उसी का है। लक्ष्य का प्रस्ताव भी एकात्मता को बना जाता है। विवाह सम्पन्न हुआ।

प्रथम रात्रि के उषाकाल में उदायनी ने सर्वप्रथम नहा धोकर दिया-बत्ती ले मन्दिर में पूजा-अर्चना सम्पन्न कर ली। नरेश अम्ब्रीश खिन्न हुये। प्रथम पूजा के श्रेय का स्वयं को अधिकारी समझ कर उदायनी को बाद में अर्चना का आदेश दिया जिसे उदायनी ने सहर्ष स्वीकार किया। कुछ समय बाद अम्ब्रीश ने अनुभव किया कि उदायनी के साधना मार्ग में अत्याधिक प्रगति की है। उसके मुख मण्डल पर अपूर्व दीप्ति, दिव्य शांति, दिव्य आभा-भाव, समाधि की स्थिति देखकर तुलना में अपनी स्थिति कम अनुभव कर राजा अम्ब्रीश को कष्ट हुआ। उदास और खिन्न रहने लगे और राज-धर्म-कर्म में कम रुचि लेने लगे।

इन्हीं दिनों ब्रह्मर्षि वशिष्ठ राजमहल में पधारे। राज्य के मनोवेगों को भांप लिया और कारण पूछा। राजा ने स्पष्ट बता दिया। तो महर्षि बोले-"वत्स अम्ब्रीश! अध्यात्म उत्कर्ष से पूजा अवधि का कोई सम्बन्ध नहीं है, भावना का है। तुम्हारी पूजा में 'अहम्' की भावना है जबकि उदायनी की पूजा में समर्पण है, वहां अहम् नहीं है, जहाँ अहम् है वहाँ ईश्वर नहीं।"

श्रीमती रत्ना में समर्पण भाव था और अहम् का तो प्रश्न ही नहीं। इसी समर्पण भाव से ही अपनी दिनचर्या व्यतीत करती थीं। कहती थीं कि अपना कर्तव्य करते रहो और समय को बेकार नष्ट मत करो।

- जो अपने को समझदार समझता है, उसने समझ के द्वार बन्द कर रखे है। — निर्मल स्मृति
- प्रकृति, समय और धैर्य ये तीन महान, चिकित्सक हैं। — निर्मल स्मृति
- चरित्र मनुष्य के भीतर रहता है, यश उसके बाहर रहता है। — निर्मल स्मृति
- तुझ से तेरी याद ही अच्छी, जो मुझ से शरमाती ही नही,
  तू जा के कभी आती नहीं, यह आके कभी जाती नहीं।
- आर्य जन तो तैने कहीए, जो पीर पराई जाणे रे;
  परदु:खे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।
- विहाय कामान् य: सर्वान् पुमांश चरति नि:स्पृह:।
  निर्ममो निरंहकार: स शान्तिम् अधिगच्छति।। (भगवद् गीता 2. 18)
  अर्थ:-सभी कामनाएं छोड़कर जो मनुष्य इच्छा, ममता और अहंकार-रहित होकर विचरता है, वही शान्ति पाता है।

भजन-गीत आदि जो प्रकाश रत्ना को रुचिकर लगते थे

पर उदारता उसकी

पहुंच न पाये हम सागर तक, बहुत दूर था।
पर उदारता उसकी, बरस गया बादल बन।
छू न सके हम सूरज को, यह बहुत गरम था,
पर उदारता उसकी, हम को छुआ किरन बन।
भर न सके बाहों में हम, आकाश विशद था।
पर उदारता उसकी आया नित्य ऊर्जा बन।
ला न सके आंगन में, हम नन्दन वन को,
पर उदारता उस की, आता रहा गंध बन।
हिम गिरि पर चढ़ते यह बात असम्भव थी,
पर उदारता उसकी आया गंग नीर बन।
और परम प्रभु की दूरी, तो बस अनन्त है,
पर उदारता उसकी, तन में बसा प्राण बन।

अब प्रकाश जी के लिए

पहुंच न पाये रत्ना की ज्योत्सना तक, बहुत विशाल थी,
पर उदारती उसकी, छुआ ज्ञान रश्मियां बन।
छू न संके सेवा के विस्तार को, अति व्यापक था
पर उदारता उसकी, घर घर में विद्यमान बन।

ईश प्रार्थना

मिलता है सच्चा सुख केवल,
भगवान् तुम्हारी भक्ति में।
यही विनय है पल-पल क्षण-क्षण,
रहे ध्यान तुम्हारी भक्ति में।।
चाहे वैरी कुल संसार बने,
चाहे जीवन मुझ पर भार बने।

चाहे मौत गले का हार बने,
रहे ध्यान तुम्हारी भक्ति में।। मिलता.........

चाहे संकट ने मुझे घेरा हो,
चाहे चारों ओर अंधेरा हो।
पर मन न डग मग मेरा हो,
रहे ध्यान तुम्हारी भक्ति में।। मिलता.........

चाहे अग्नि में मुझे चलना हो,
चाहे कांटो पर भी चलना हो।
चाहे छोड़ के देश निकलना हो,
रहे ध्यान तुम्हारी भक्ति में।। मिलता.........

जिह्वा पर तेरा नाम रहे,
तेरी याद सुबह और शाम रहे।
यही काम बस आठों याम रहे,
रहे ध्यान तुम्हारी भक्ति में।। मिलता.........

सुपथ पर

जीवन के अन्तिम क्षण तक,
हे नाथ! सुपथ पर मुझे चलाना।
कभी भूल कर चलूं कुपथ पर,
खींच मुझे तुम पीछे लाना।।

नश्वर धन वैभव के लिये,
कभी कुपथ पर भटक न जाऊं।
धन वैभव पाऊं तो भगवन्,
सदा सुपथ पर चलकर पाऊं।।

जन-धन-वैभव साथ न आया,
साथ न ये मेरे जाएगा।
चलना पड़े यहां से जिस दिन,
काम न कुछ मेरे आएगा।।

क्यों फिर मैं विदेह धन हेतु,
चलूं कुपथ पर, पाप कमाऊं।।
अग्ने नये सुपथा राय का (मुझे),
क्यों न निरन्तर पद यह गाऊं।।

गीत

कुछ-कुछ इस प्रकार गुनगुनाया करती थीं

जाने वो कैसे लोग थे जिनके प्यार को प्यार मिला,
हमने तो जब कलियां मांगी, कांटों का हार मिला।
जाने वो कैसे....................

खुशियों की मंज़िल ढूंढी तो ग़म की गर्त मिली,
चाहत के नग़मे चाहे तो आहें सर्द मिलीं,
मिल के बोझ को दूना कर गया जो गमख़ार मिला।।
हमने तो जब..................
जाने वो कैसे..................

बिछुड़ गया बिछुड़ गया,
बिछुड़ गया हर साथी देकर पल दो पल का साथ,
किस को फ़ुरसत है जो थामे दीवानों का हाथ,
हम को अपना साया भी अक्सर बेज़ार मिला।।
हमने तो जब..................
जाने वो कैसे..................

इस को ही जीना कहते हैं, तो यूं ही जी लेंगे,
उफ न करेंगे, लब सी लेंगे, आंसू पीलेंगे,
ग़म से अब घबराना कैसा, ग़म सौ बार मिला।।
हमने तो जब..................
जाने वो कैसे..................

भजन

प्रभु तेरे बन्दे तुझे ढूंढते हैं
तू है सर्वव्यापक उसे ढूंढते हैं। प्रभु.......
बनाते तेरी मूरत झुकाते हैं सर को
निराकार तू देता आकार जग को
कभी साथ जिसने हमारा न छोड़ा
वह ह्रदय में हमारे सदा गूंजते हैं। प्रभु.............
जो सदियों से तेरा सिमरन करते आये,
पर अब तक कभी न तुझे ढूंढ पाये,
न पाया किसी ने कभी भेद तेरा,
जो पा जाते तुझ को सदा झूमते हैं। प्रभु................

जले ज्योति मन में करे ध्यान तेरा,
खुले ज्ञान चक्षु मिटे भर्म मेरा,
है जिसका न कोई तू उसका सहारा,
है यह ज्ञान जिनको तुझे पूजते हैं। प्रभु..............

नारी जीवन की श्रेष्ठता

नारी जीवन गहरा सागर, दोनों एक समान,
इसमें भी तूफ़ान हमेशा, उसमें भी तूफ़ान।
चैन नहीं मौजों को जैसे, यह भी चैन न पाये,
दुनिया से छुप छुपकर रोये दिल का दर्द छुपाये,
लाख सितम हो फिर भी इसके होठों पर मुस्कान।
नारी जीवन गहरा सागर..।
हंसे तो बुरा कहे जग रोय तो बदनाम,
ग़म खाना और आंसू पीना यही है इसका काम।
इसी तरह यह अबला नारी होती है बलिदान,
नारी जीवन गहरा सागर..।
चाहे इसको गले लगायें, चाहे मारें ठोकर,
फिर भी अपना धर्म न छोड़े, रहे पति की होकर।
बुरा भला जैसा भी हो, पर इसके लिये भगवान्
नारी जीवन गहरा सागर..।

देवियो!

देवियो! संसार की यह शान शोभा तुमसे है,
इस मनुज समुदाय की अतिरम्यरचना तुमसे है।
तुम न होती तो यहां क्या था? अजी कुछ भी न था,
यह समा सत्संग, अभिनय प्रेम गाथा तुमसे है।
देवियो संसार की..।
इस मनुज समुदाय..
पोषिका प्रिय पुत्र की, तुम कान्त की अनुगामिनी,
व्यथित हृदयों को धर्म धीरज दिलासा तुम से है।
देवियो! संसार की..।
इस मनुज समुदाय..।
पुरुष तो प्रायः विमुख कर्तव्य से हो ही रहे
इस विषय वातावरण में धर्म रक्षा तुमसे है।

देवियो! संसार की...।
इस मनुज समुदाय..।
इस निराशा की निराड में, नारियो! कह दो प्रकाश,
आज अपने देश को क्या-क्या न आशा तुमसे है।
देवियो! संसार की...।
इस मनुष्य समुदाय...।

स्व से स्व के लिये काव्य साधना

इस विराट जीवन पथ को, मत निज लघुता से तोलो,
पाना है यदि लक्ष्य पथिक, तो पंख हृदय के खोलो।
मत जीवन के अमृत कलश में, तृष्णा के विषय घोलो,
पाना है यदि लक्ष्य पथिक तो पंख हृदय के खोलो।
निकल पड़े तो मंजिल पाना, मानवता का स्वाभिमान है,
मन चाहा पा लेने में ही, इस जीवन की शान है।
जब तक मिले न लक्ष्य अनश्वर नहीं अंधेरा नियति हमारी,
भटकों को सत्पथ दिखलायें, लक्ष्य हीन को लक्ष्य दिखलायें।
जीवन पथ पर चलते रहना, हम चिर ज्योति समान हैं,
तम में स्वयं किरन बन जायें, यही यथार्थ मंगलजीवन है।
दिखाती स्वप्न भूत की रात कल्पना है भविष्य की बात,
आज के जीवन का अभिनन्दन करें, कल का क्यो क्रन्दन करें।
इतनी गंध उड़े जीवन से कि गन्ध मिले चन्दन वन को,
अपना मन इतना मथने दो, कि ईर्ष्या हो सागरभर को।
खड़ा सामने आज शुभावसर, स्वयं मशाल जलायें,
जीवन में ऐसा शुभावसर, जाने फिर कब आये।
बहती गंगा द्वार तुम्हारे, तन मन विमल बनाओ,
जीवन बेकार न जाये, ऐसा पथ अपनाओ।

- वो थे न मुझसे दूर, न मैं उन से दूर था।
  आता न था नज़र तो नज़र का कसूर था।। (जिगर)
- जब देख न सकते थे तो दरिया भी था कतरा।
  जब आंख खुली कतरा भी दरिया नज़र आया।। (जिगर)
- सब जीवों को सुख मिले, मुझे सुख मिले। (अथर्व0 18.2.52)
- प्रभु! मुझे श्रद्धा और बुद्धि प्रदान करें।
  स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्रयच्छतु।। (अथर्व0 19.64.1)
- Brahm is all pervading. ईशावास्यमिदं सर्वं। (ईशोप0)
  lust not after any one's possession. मा गृधाः कस्यस्विद्धनम्। (इशोप0)

भजन

दाता तेरे सुमिरण का वरदान जो मिल जाये।
मुरझाई कली दिल की इक आन में खिल जाये।।

१. सुनते हैं तेरी रहमत दिन रात बरसती है।
इक बूंद जो मिल जाये जीवन ही बदल जाये।। दाता तेरे..........

२. ये मन बड़ा चंचल है भक्ति में नहीं लगता।
इतना इसे समझाऊँ फिर भी ये मचल जाये।। दाता तेरे..............

३. ये नाथ मेरे दिल की बस एक तमन्ना है।
पापों से बचा लेना कहीं पाँव न फिसल जाये।। दाता तेरे..........

४. देवत्व के फूलों से दामन को मेरे भर दो।
जीवन ये सुगन्धित हो दुर्गन्ध निकल जाये। दाता तेरे................

5. ये मानव तू दिल से प्रभु नाम का सुमिरण कर
दोषों भरे जीवन का कांटा ही निकल जाये। दाता तेरे...............

भजन

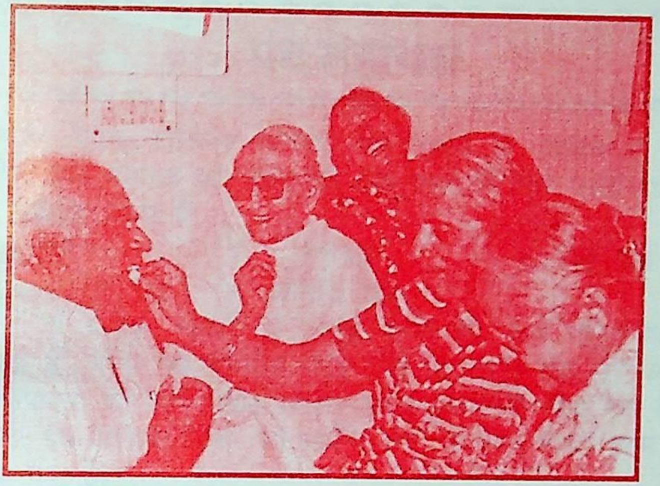
कैसे प्रभु तूने-कैसे प्रभु तूने कायनात बांधी
एक दिन के पीछे एक रात बांधी,
रात बांधी, साथ-साथ बांधी।
कैसे प्रभु तूने........................
कभी थकते नहीं यह घोड़े चांद सूरज के रथ में जो जोड़े
चान्द दूल्हा बना रजनी बयाहने चला,
चन्द्रमा के पीछे तारों की बारात बांधी
बारात बांधी साथ-साथ बांधी
कैसे प्रभु तूने..................
कितनी खूबी से बांधे ये मौसम,
वर्षा सर्दी हेमन्त और ग्रीष्म,
यह बहार का समा और यह पतझड़ की खिज़ां
हवा बादलों के साथ साथ बरसात बांधी
बरसात बांधी साथ-साथ बांधी,
कैसे प्रभु तूने..................
जीव जन्तु और जलचर चौपाये,
सब तूने जोड़े बनाये,
राग और रागिनी नाग और नागिनी,
पुरुष के साथ इक स्त्री की जात बांधी
साथ साथ बांधी,

Lives of greatman all remind us,
We can make our lives sublime.
And departing, leave behind us,
Foot prints on the sands of time.
सज्जन चरित सिखाते हम भी कर सकते हैं निज उज्जवल।
जग से जाते समय रेत पर चरण चिन्ह छोड़ें निर्मल।।
Foot prints, that perhaps another,
Sailing o'er life's solemn main.
A forlorn and a ship wrecked brother,
Seeing may take heart again.
चरण चिन्ह जो देख कदाचित उत्साहित होवे भाई।
भवसागर की चट्टानों पर नौका जिसकी टकराई।।
Let us then be up and doing,
With a heart for any fate,
Still achieving, still pursuing,
Learn to labour and to wait.
हो सचेत श्रम करो मित्र अब चाहे जो कुछ हो परिणाम।
सदा उद्यमी होकर सीखो, धीरज धरना करना काम।।
Lives of small men all remind us,
Each should write his life himself,
And departing leave behind him,
Two octavoes on the shelf.

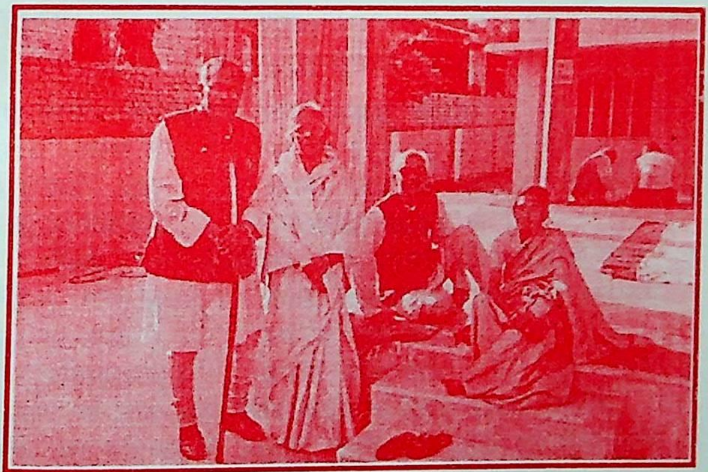
श्रद्धेया दीदी को

हे शुभ! मंगल मयी! सुभाषिणी
तुच्छ यह उपहार लो।
मैं मन्द मति, जड़ वंचिता,
मेरे तरल उद्‌गार लो।
मैं नत-प्रणव, श्रद्धावनत,
हूं सदा सम्मुख आपके।
देकर मुझे आशीष एक,
मेरे प्रणाम हज़ार लो।
शत शत नमन के साथ

–डा0 सत्य सक्सैना वंचिता



अपनी माँ, भाभी, पुत्रवधू के बीच आह्लादित होती हुई प्रकाशवती रत्ता अपने भाई को टीका लगाते हुए



जीवन के तृतीय सवन में पति-पत्नी महर्षि दयानन्द स्मारक, ज्वालापुर के यज्ञशाला में यज्ञ के उपरान्त

पंच महायज्ञ

व्यक्ति एवम् व्यक्तित्व परिवार और समाज के उत्थान के लिये निम्मांकित पांच महायज्ञ को जीवन का अंग बनाने के लिये महर्षि दयानन्द जी ने निर्देशित किया है।

१. ब्रह्म यज्ञ **२. देवयज्ञ** **३. पितृ यज्ञ**
४. बलिवैश्वदेव यज्ञ **५. अतिथि यज्ञ**

वैसे तो प्रत्येक महायज्ञ में प्रस्तुत मन्त्रों को अर्थो सहित जानना आवश्यक है, वरना यज्ञ निरर्थक सिद्ध होता है, परन्तु ब्रह्म यज्ञ अर्थात् सन्ध्या उपासना को अर्थ सहित सम्पन्न करना आवश्यक माना गया है।

अतः इस विशिष्ट विचार को सार्थक करने के लिए केवल ब्रहम यज्ञ ही दिया गया है।

प्रत्येक मंत्र के नीचे दो प्रकार के अर्थ दिये गये हैं। (क) एक तो सम्पूर्ण मंत्र का अर्थ और (ख) दूसरा वह संक्षिप्त अर्थ है जो सन्धया करते समय मन्त्र उच्चारित करते अर्थ पर भी ध्यान केन्द्रित रहे।

ब्रह्म यज्ञ (सन्ध्या)

(क मे सम्पूर्ण अर्थ और ख में सन्ध्या के मंत्रों के साथ साथ मन्त्र के आशय का मनन)

१. अथाचमन मन्त्रः

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्त्रवन्तु नः।। (य0 ३६.१२)

(क) **(देवीः आपः)**	सबका प्रकाशक सर्वव्यापक ईश्वर
(अभिष्टय)	मनोवांछित आनन्द के लिये
(पीतये)	और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति के लिये
(नः शम् भवन्तु)	हमको कल्याणकारी हो। वही परमेश्वर
(नः शंयोः)	हम पर सुख की
(अभिस्त्रवन्तु)	सर्वथा वृष्टि करें।

(ख) मन्त्र के साथ-साथ मनन करने के लिये संक्षिप्त चिन्तनः
प्रकाशक प्रभु सदिच्छा के आनन्द, कल्याण व सुख की वर्षा करें।

२. अथेन्द्रिय स्पर्श

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुः चक्षुः।
ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयं। ओ कण्ठः।
ओ शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। ओं करतल करपृष्ठे।।

(क) अर्थात् ईश्वर की कृपा से सभी इन्द्रियां, वाणि, मुख, प्राण, नासिका, दृष्टि-नेत्र, श्रवण-कर्ण, नाभि, हृदय, कण्ठ, शिर, बाजू-यश और बल के साथ हथेली और इनका पृष्ठ भाग सब बलवान रहें।

(ख) ईश्वर कृपा से सभी इंद्रियां बलवान हों।

३. अथ मार्जन मन्त्राः

ओ भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः।
ओ स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये।
ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। ओं तपः पुनातु पादयोः।
ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि। ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र॥

(क) शरीर के अंगों पर जल से मार्जन करें
सर्वोत्तम नाम ओ३म् है।
(१) प्रिय प्रभु शिर पवित्र करें।
(२) दुःख दूर करने वाला प्रभु नेत्र पवित्र करें।
(३) सुख स्वरूप प्रभु कण्ठ पवित्र करें।
(४) महानतम प्रभु हृदय पवित्र करें।
(५) जगत उत्पन्न कर्ता प्रभु नाभि पवित्र करें।
(६) तप स्वरूप प्रभो दोनों पैर पवित्र करें।
(७) सत्यस्वरूप प्रभु पुनः शिर पवित्र करें।
(८) सर्वव्यापक ब्रह्म प्रभु समस्त स्थान पवित्र करे।
(ख) मन्त्र के साथ-साथ मात्र अर्थ का मनन निमांकित ढंग से करते जायें:
(ख१) सर्वोत्तम नाम वाले प्रभु हमारे सभी अंगों के कार्य पवित्र हों।

प्राणों से प्रिय, दुःख रहित करने वाले, सुख स्वरूप, महान, सृष्टि उत्पन्न कर्ता, तपस्वी, सत्य स्वरूप सर्वव्यापक ब्रह्म कृपया सभी अङ्ग पवित्र करें।

४. प्राणायाम मन्त्राः

ओं भूः। ओं भुवः। ओ स्वः। ओ महः। ओ जनः। ओं तपः। ओ सत्यं॥
(तैत्ति प्रपा० 20।अनु 71।।)

(क) ओंकार, प्राणों से प्रिय (भूः) सब दुःखों को दूर करने वाला (भुवः) सुख स्वरूप (स्वः), सब से बड़ा (महः) जगत् उत्पादक (जनः), दुष्टों को दण्ड देने वाले ज्ञान स्वरूप (तपः), अविनाशी (सत्य) सर्व व्यापक (ब्रह्म) परमात्मा का नाम लेकर ३ बार प्राणायाय करें।

(ख) सात गुणों वाले परमात्मा का मात्र स्मरण करके तीन बार प्राणयाय करें।

अथ अघमर्षण मन्त्राः।

ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभिद्धात् तपसोऽध्यजायत्।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥१॥

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत्।
अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी॥२॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवींचान्तरिक्षमथो स्वः॥३॥ (ऋ०८-४८-१३)

अघमर्षण अर्थात् पाप त्यागने का अनुष्ठान करें।

व्याख्या:-

(क) मन्त्र-३

(धाता) धारण व पोषण करने वाला **(वशी)** वश में करने वाला प्रभु (यथा पूर्वम) जिस प्रकार पूर्व कल्प की सृष्टि से जगत् की रचना की **(सूर्याचन्दमसौ)** जैसे पूर्वकल्प में उसी प्रकार इस कल्प में सूर्यचन्द्र लोक रचे हैं तथा **(पृथिवीम् च अन्तरिक्षम् च)** जैसे पृथिवी दिखती है और अंतरिक्ष-पृथिवी और सूर्य लोक के बीच का पोलापन स्वः-सभी लोक **(अकल्पयत)** रचे हैं। जैसे ईश्वर ने पहले रचे थे अब भी रचा है। और आगे भी रचेगा।

(ख) साथ-साथ संक्षिप्त निमांकित अर्थ भी ध्यान में रखते जाना चाहिये। सब जगत् को धारण व वश में करने वाले परमेश्वर ने पूर्व कल्प की तरह इस कल्प में भी सूर्य चन्द्र के प्रकाश को व पृथिवी तथा अन्तरिक्ष लोक रचे है।

मन्त्र-२

(क) **(विश्वस्य मिषतः विदधतः)** ईश्वर ने सहज स्वभाव से जगत् के इन को रचा है अर्थात् रात दिन घटिका पल और क्षण आदि (विदधत्) रचे हैं।

(ख) संक्षिप्त मनन योग्य आशय-

प्रभु ने सहजस्वभाव से दिन, रात, समुद्र, संवत्सर आदि रचे है।

मन्त्र १

(क) **(अभिद्धात् तपसः)** ईश्वर ने अनन्त सामर्थ्य से सब जगत् को रचा है क्योंकि सब जगत् के बनाने की सामग्री ईश्वर के आधीन है।

(ऋतम्) उसने वेदशास्त्र को प्रकाशित किया जैसे पूर्व कल्प में प्रकाशित था और आगे के कल्पो में भी वेदों का प्रकाश होगा, **(सत्यम्)** जो सत्त्व, रज और तमोगुण से युक्त है को **(अध्यजायत्)** उत्पन्न किया है। **(तता रात्र्यजायत)** प्रलय के पीछे हजार चतुर्युगी के प्रमाण से है को उत्पन्न किया है और **(ततः समुद्रो अर्णवः)** उसी सामर्थ्य से पृथिवी और मेघ मण्डल में जो महासमुद्र है, पूर्व कल्प की तरह उत्पन्न हुआ है।

(ख) ईश्वर ने सामर्थ्य से जगत्, वेद शास्त्र, मेघ, समुद्र रचे।

मन्त्र (२) पहली पंक्ति

(समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत)

उसी समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर अर्थात्क्षण, मुहूर्त, प्रहर आदिकाल भी पूर्व सृष्टि के समान उत्पन्न हुआ।

(ख) संक्षिप्त मन में अर्थ का ध्यान करें :

ईश्वर के सामर्थ्य से वेदशास्त्र जैसे शाश्वत सत्य-सत्व एवम् रज, तम आदि गुणों से युक्त सब उत्पन्न हुए। प्रलय से पीछे रात्रि-अन्धकार हुआ, पृथिवी, मेघ आदि और संवत्सर पैदा हुये।

पुनः आचमन मन्त्र

ओं शन्नो....................स्रवन्तु नः।।

अथ मनसा परिक्रमा मन्त्राः

१. ओ प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।१।।

(क) (**प्राची दिगाग्निराधिपतिः**) सूर्य उदय होने वाली पूर्व दिशा में अग्नि जो ज्ञानस्वरूप सब जगत् का अधिपति, स्वामी (**असितः**) बन्धन रहित (**रक्षिता**) रक्षा करने वाला (**आदित्या इषवः**) जिसके बाण सूर्य की किरने हैं। (**तेभ्योनमो ऽधिपति म्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु**) उस अधिपति, रक्षा करने वाले, पापियों को दण्ड देने वाले उसके बाणों को हमारा नमस्कार हो।

(**यो३स्मान् द्वेष्टि**) जो प्राणी अज्ञान से हमारे से द्वेष करता है।

(**यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः**) और अज्ञान से जिस विद्वान या पापी का हम द्वेष करते है,उन सबका अपने बाण से प्रभु दग्ध कर दें अथवा कर देते हैं।

(ख) पूर्व दिशा में अग्नि अर्थात् ज्ञानस्वरूप प्रभु जो सूर्य की किरणों जैसे बाणों से रक्षा करते हैं उनको नमन्।

जो प्राणी अज्ञान वश हमसे द्वेष करते है अथवा जिनसे हम द्वेष करते है उन सबका अपने बाणों से परमात्मा दग्ध करें अथवा न्याय करें।

२. ओं दक्षिणा दिग्न्द्रिोऽधिपति स्तिरश्चिराजी रक्षितापितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्योनम एभ्यो अस्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।२।। (अथर्व0 ३/२७-२)

(क) प्रभु जो (**दक्षिणा दिक् अधिपति**) दक्षिण दिशा का अधिपति है, (**इन्द्र**) ऐश्वर्य शाली है, (**तिरश्चि राजी**) जो कीट पतंग वृश्चिक आदि की जो पंक्ति है, उससे (**रक्षिता**) रक्षा करने वाला एक परमेश्वर है, (**पितरः**) सृष्टि में ज्ञानी लोग (**इषवः**) बाण के समान हैं। शेष भाग का अर्थ पहले की तरह है।

(ख) दक्षिण दिशा का ऐश्वर्यवान अधिपति प्रभु, कीट पतंगों की पंक्ति से

हमारी रक्षा ज्ञानी लोगों द्वारा करता है जो अज्ञानवश हमसे द्वेष करते हैं या जिनसे हम द्वेष करते है उन सब का ज्ञानी के ज्ञानरूपी बाणों से दग्ध करें या निर्णय करें।

३. ओम् प्रतीचीदिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३॥ (अथर्व0 ३/२७-३)

(क) **(प्रतीची दिग्वरुणेऽधिपतिः)** पश्चिम दिशा में जो वरुण सब का राजा परमेश्वर है (पृदाकू रक्षितान्नमिषवः) जो बड़े-बड़े अजगरों सर्पादि विषधारी प्राणियों से रक्षा करने वाला है, जिसके अन्न अर्थात् पृथिव्यादि पदार्थ बाण के समान हैं, जो श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों के ताड़ना के लिये हैं। **(तेभ्यो नमो०)** अर्थ पूर्व मन्त्र के समान है।

(ख) मन्त्र के साथ-साथ निमांकित अर्थो का मनन करते जाना। पूर्व दिशा का राजा प्रभु अन्न पृथिव्यादि जैसे बाणों से हमारी अजगरादि से जो रक्षा करता है, उस अधिपति रक्षा करने वाले को तथा बाणों को नमन हो। जो अज्ञान वश हमसे द्वेष अथवा जिनसे हम द्वेष करते हैं उन सबका अन्न पृथिवी जैसे बाणों से दग्ध करें या निर्णय करें।

४. ओम् उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः (अथर्व0 ३/२७-४)॥

(क) जो उत्तर दिशा में सोम-ज्ञानादि गुणों वाला प्रमुख अधिपति है, **(स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः)** जो अच्छी प्रकार अजन्मा और रक्षा करने वाला है। जिसके अपने विद्युतरूपी बाण हैं शेष पहले मन्त्रों जैसा।

(ख) उत्तर दिशा में ज्ञान स्वरूप सोम अधिपति है, जो अजन्मा और विद्युत बाण धारी है, से रक्षा करता है उस रक्षा करने वाले व बाणों को नमन। जो हम से द्वेष करे या जिनसे हम द्वेष करें विद्युतादि बाणों से दग्ध व न्याय करे।

५. ओम ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः। (अथर्व0 ३-६-२७-५)

(क) **(ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः)** ध्रुवा अर्थात् नीचे की ओर विष्णु अर्थात् व्यापक परमात्मा का ध्यान करना। **(कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः)** जिसके हरित रंग वाले वृक्षादि ग्रीवा के समान हैं, जिसके बाण के समान सब वृक्ष हैं, उनसे अधो दिशा में हमारी रक्षा करें। **(तेभ्यो नमो.........)** आगे का अर्थ पूर्ववत् जान लेना।

(ख) नीची दिशा में व्यापक नाम से ईश्वर जिसके हरित वृक्ष ग्रीवा के समान है, जिसके सब वृक्षादि बाण के समान हैं वह ईश्वर हमारी रक्षा करें।

उस अधिपति, रक्षक एवम् बाणों को नमन। जो हम से द्वेष करते हैं अथवा जिनसे हम द्वेष करते हैं उनको अपने बाण रूपी वृक्षों से दग्ध करे या न्याय करें।

६. ओम् ऊर्ध्वादिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्म (अथर्व0 ३-६-२७-६)

(क) (**ऊर्द्धवा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः**)

ऊपर की दिशा में वाणी का स्वामी बृहस्पति परमेश्वर है, उसको रक्षक जानें। जिसके बाण के समान वर्षा के बिन्दु हैं, उनसे हमारी रक्षा करे।

(**तेभ्यो............**) पूर्व के मन्त्रों जैसा।

(ख) ऊपर की दिशा वाणी के स्वामी बृहस्पति ईश्वर जो रक्षक है, अपने वर्षा रूपी बाणों से रक्षा करे। उस अधिपति रक्षक को और उसके बाणों को नमन। जो हमसे द्वेष करते है, अथवा जिन से हम द्वेष करते हैं, उन सबको अपने बाणों से वह दग्ध करे या न्याय करे।

अथोपस्थान मन्त्राः

ओम् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥१॥ (य०३५-१४)

(क) हे परमेश्वर! (**तमसस्परि स्वः**) सब अंधकार से अलग प्रकाशस्वरूप (**उत्तरम**) प्रलय के पीछे सदा वर्तमान (**देवं देवत्रा**) देवों में भी देव, सूर्यम् चराचर के आत्मा (**ज्योतिरुत्तमम्**) ज्ञान स्वरूप और सबसे उत्तम आपको (**पश्यन्त**) जानकर के (**वयं उदगन्म**) हम लोग सत्य से प्राप्त हुए हैं।

हमारी रक्षा आपके हाथ में है।

(ख) हे परमेश्वर! अन्धकार से दूर प्रलय से पीछे महादेव आप चराचर की आत्मा हैं ज्ञान स्वरूप आप हमारी रक्षा करे।

ओम् उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (यजु0३३-३१)

(क) (**उदुत्यं जातवेदसं**) जिसने वेद दिये और जो जातवेदा नाम से प्रसिद्ध है। (**देवम्**) जो महादेव है और (**सूर्यम्**) जगत का प्रकाशक है, (**त्वम दृशे विश्वाय**) विश्व विद्या के लिये। हम उपासना करते हैं। (**उद्वहन्ति केतवः**) वेद श्रुति और जगत् की उत्पत्ति कर्ता उसी परमात्मा को प्राप्त कराते है, उसी अन्तर्यामी की उपासना सदा करें।

(ख) वेदादि के जनक जातवेदा, महादेव प्रकाशक, वेदों के दाता की हम उपासना सदा करे।

ओम् चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आ प्रा द्यावापृथिवी

अन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।। (यजु0 ७-४२)
(क) (**जगत् च तस्थुषः**) प्राणी और जड़ जगत् का जो (**आत्मा सूर्यः**) आत्मा है उसे सूर्य कहते हैं जो (**द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं**) सूर्य, पृथिवी और अन्तरिक्ष और अन्य लोकों को (**आप्रा=आ+अप्रा**) धारण और रक्षा करता है, (**मित्रस्य चक्षु**) जो मित्र और सूर्य लोक व प्राण का प्रकाश करने वाला है, (**वरुणस्य अग्ने**) उत्तम कर्मों में वर्तमान मनुष्य, प्राण, अपान और अग्नि (**चक्षुः**) प्रकाश करने वाला है। (**चित्रं देवानाम्**) जो अद्भुत स्वरूप और विद्वानों के हृदय में सदा रहता है, (**अनीकम्**) सब दुःखों को नाश करने वाला बल है वह परमात्मा (**उदगात=उत्+अगात्**) हमारे हृदयों में प्रकाशित रहे (**स्वाहा**) सत्यता से प्राप्त होता है।
(ख) जड़-चेतन जगत् की आत्मा सब का धारण करता है, मित्र प्रकाशक, प्राण अपान व अग्नि, विद्वानों के हृदय के अदभुत स्वरूप वाला है, उत्तम बल है वे परमात्मा सत्यता से हमारे हृदयों में प्रकाशित हो।

ओम् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं। श्रृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्। ।।यजु0 ३६-२४।।
(क) जो ब्रह्म (**चक्षुः देवहितं**) द्रष्टा, विद्वानों का परम हितकारी तथा (**पुरस्तात शुक्र**) सृष्टि के पूर्व मध्य और पश्चात् में सत्य स्वरूप से वर्तमान रहता है। (**उच्चरत्=उत+चरत्**) उत्कृष्टता से सर्व व्यापक (उद्) प्रलय के बाद भी विद्यमान है, उस ब्रह्म को हम लोग (**शतं शरदः**) सौ वर्ष पर्यन्त (**पश्येम**) देखें (**शतं शरदः जीवेम शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतम् प्रब्रवाय**) सौ वर्ष पर्यन्त जीवें, सुनें, बोलें, (**शरदः शतं अदीना स्याम**) सौ वर्ष किसी के आधीन न रहें। (**शरदः भूय शतात्**) सौ वर्ष के उपरान्त भी देखें, जीवें, सुनें और स्वतन्त्र रहें अर्थात् दृढ़ इन्द्रियों, शुद्ध मन और आनन्द सहित हमारी आत्मा सदा रहे।
(ख) सब का द्रष्टा विद्वानों का हितकारी सत्य से वर्तमान है, सदैव रहने वाला है, उस प्रभु को सौ वर्ष पर्यन्त देखें, हम जियें; सुनें, बोलें और अदीन रहें। 100 वर्ष के उपरान्त भी लोग ऐसा करें।

गायत्री गुरु मन्त्राः

ओम् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्। (यजु0 ३६-३ ऋ०३-६२-१०)
(क) (**ओम्**) सर्वरक्षक (**भूः**) प्राणों के प्राण (**भुवः**) दुःख विनाशक (**स्वः**) सुख स्वरूप (**तत्सवितुः**) संसार के उत्पादक प्रेरक (**देवस्य**) प्रकाश स्वरूप, (**तत् वरेण्यम्**) उस वरने योग्य (**भर्गो**) शुद्ध स्वरूप को (**धीमहि**) हम धारण करें (**यो**) जो धारण किया हुआ तेज या ज्ञान या परमात्मा (**नः**) हमारी (**धियः**) बुद्धियों को (**प्रचोदयात्**) शुभ कर्मों में

प्रेरित करे।

(ख) प्राणों के प्राण, दुःख नाशक, सुख स्वरूप उत्पादक व सर्व प्रेरक प्रकाश स्वरूप वरने योग्य शुद्ध एवं सर्वरक्षक को हम धारण करें जिससे वह तेज व ज्ञान अथवा परमात्मा हमारी बुद्धियों को शुभ कर्मों के लिये प्रेरित करे।

समर्पण मन्त्र

हे ईश्वर! दयानिधे! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादि कर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।

(क) (**हे ईश्वर दयानिधे**) हे ईश्वर दयानिधे (**भवत् कृपया**) आपकी कृपा से (**अनेन जप+उपासना आदिकर्मणा**) इस जप उपासना आदि कर्मों से (**धर्म अर्थ कामः**) धर्म अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है (**मोक्षाणाम्**) दुःखों से छूटकर आनन्द में रहना है, इन चार पदार्थ धर्म-अर्थ -काम-मोक्ष की सिद्धि हम को (**सद्यः**) शीघ्र (**भवेत**) प्राप्त हो।

(ख) दयालु प्रभु, अपनी कृपा से चार पदार्थ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को हमें शीघ्र प्राप्त कराइये।

नमस्कार मन्त्रः

ओम् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च।
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च।
नमः शिवाय च शिवतराय च। यजु० १६/४१

(**शम्भवाय**) जो सुख स्वरूप (**मयोभवाय**) संसार के उत्तम सुखों का दाता हो और (**शंकराय**) कल्याण का कर्ता और (**मयस्कराय**) भक्तों को कल्याण एवं सुख देने वाला और (**शिवाय**) मंगल स्वरूप और शिवतराय धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष सुख देने वाला है, उसके लिये (**नमः नमः नमः च**) हमारा बारम्बार नमस्कार हो।

(ख) सुखस्वरूप, सुखों को देने वाला, कल्याण स्वरूप कल्याण देने वाला, मंगल स्वरूप मोक्ष सुख या मंगल देने वाला प्रभु! आपको बारम्बार नमस्कार हो।

इति सन्ध्योपासना विधिः

विशिष्ट मन्त्र (सुखी जीवन)

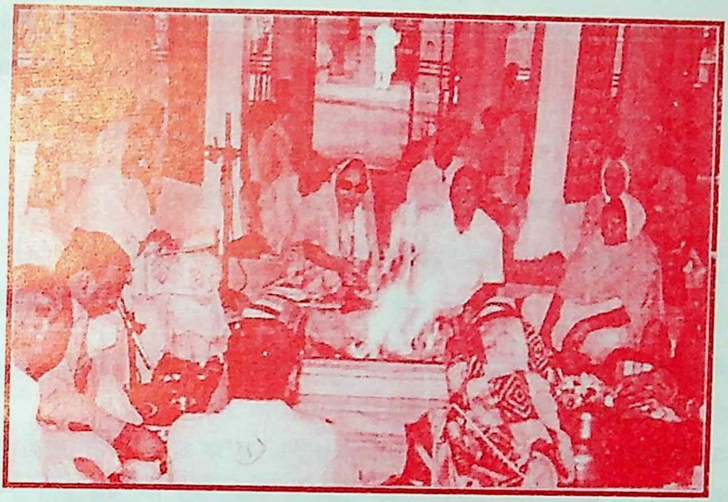
विश्वऽदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्य्यमुच्चरन्तम्।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनाम्, देवां ओहानोऽवसागमिष्ठः।। ऋ० ६/५२/५।।

आशय

हम सदा पवित्र, प्रसन्न हृदय वाले (प्रसन्नचित) हों। सदा उदय होते हुए सूर्य को देखें। धन का महास्वामी, देवों को लाने वाला और प्रेमपूर्वक आने वाला अग्नि, ऐसा ही करे।

-डॉ० कपिल देव द्विवेदी

ज्वालापुर आर्य वानप्रस्थाश्रम यज्ञशाला



ब्रह्मा के रूप में एक युगल को वानप्रस्थ की दीक्षा देते समय



विशेष यज्ञ की ब्रह्मा के रूप में

सुकृतों के लोक में पहुंचे।

२. बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य से यह आत्मा ओतप्रोत हो।

३. किसी प्रकार की पारिवारिक, मित्र और अमित्रों की ओर से कोई बाधाएं न आयें।

४. प्रतिभाओं के विकास का पूर्ण अवसर मिले।

५. इस जन्म में तो स्वयं के प्रयासों से इतना स्वाध्याय, लेखन, प्रवचन की निपुणता तक पहुंचीं परन्तु आगामी जीवन में सहयोग का अभाव न हो और वेदों के अध्ययन की तेजस्विता प्राप्त हो।

६. इस जन्म में पगे पगे बाधाओं के कारण यह प्राणी मधुमेह एवम् हृदय की व्याधियों में ग्रस्त होते हुए भी आंशिक रूप से कुछ आगे बढ़ पायीं परन्तु प्रभु! आगामी जीवन में भरपूर स्वास्थ्य, बल, चिन्तन शक्ति, स्मृति और सौहार्द्र प्रदान करना ताकि अपनी उच्च आकांक्षाओं की भरपूर पूर्ति कर सकें।

७. सौमनस्कता और व्यवहार कुशलता की प्रतिमूर्ति बनें। इनका कोई विरोधी नहीं हो और किसी प्रकार की हीनता न प्रवेश करे। उस व्यक्तित्व में उच्च कोटि का निखार मिले।

८. सोम प्राप्त करें जिनमें निम्नांकित प्राप्तियां होंगी:

(i) सुन्दर वाणी-मधु जिह्वा, शुचि जिह्वा, मित जिह्वा।
(ii) शिव संकल्प वाला मन।
(iii) पुरुषार्थ, बुद्धि, आचरण, आदि में वृद्धि।
(iv) वीरत्व
(v) सादन्यम्-विद्वान-अतिथि सत्कार।
(vi) विद्याध्ययन-यज्ञ की योग्यता।
(vii) सथेयम्-सभा में बैठने का ढंग।
(viii) वितृश्रणम्-बड़ों की बात श्रद्धा से सुनना।

तब हम **"अमृता अभूम्"** अमृत बनेंगे।

९. इस जीवन में मस्तिष्क की स्थिरता, पारिवारिक सौहार्द्रपूर्ण वातावरण के अभाव के होते हुए भी, इनकी स्मरण शक्ति की प्रखरता प्रशंसनीय थी। प्रभु से प्रार्थना है कि प्रारंभ से ही अगला जीवन बाधाओं से रहित हो और इस जन्म से भी कहीं अधिक स्मरण शक्ति मिले ताकि यह परिवार-समाज और राष्ट्र की उत्कृष्ट विभूति बनें।

प्रधानाचार्या राजकीय कन्या इंटर कालेज टूण्डला (आगरा) के पद से
1987 में सेवा निवृत्ति के अवसर पर

शिक्षिका संघ की संयोजिका के उद्गार

सेवा में,

परम सम्माननीया बड़ी दीदी (श्रीमती प्रकाश वती रत्ना जी को सादर समर्पित)

उज्जवल गौर वर्ण उन्नत दीपित प्रशस्त मस्तक है।
सौभाग्यों का चिन्ह भाल पर यह सिन्दूर तिलक है।
है व्यक्तित्व अतिशय प्रभावमण्डित ज्यों उच्च हिमालय,
सौम्य पवित्र शान्त जैसा हो गौरी का देवालय।।
ओजस्वी ललाट की जगमग जो देखे झुक जाये,
दो नयनों में समता-ममता का सागर लहराये।
वाणी में वेदों की वीणा की झंकार बसी है,
और अरुण दो धरों पर निर्मल निष्पाप हंसी है।।
सांचे ढली नासिका निश्छल स्वाभिमान की द्योतक,
पवन वेग सी चाल आपके आन बान की सूचक
कर्म निष्ठ कर्तव्य निष्ठ हो समय निष्ठ भी अद्‌भुत,
कार्य प्रणाली देख आपकी सभी हो रहे विस्मित।।
विपुल गुणों की खान और संस्कृत हिन्दी की ज्ञाता,
सबके सुख की इच्छुक वैदिक मन्त्रों की उद्‌गाता।
परोपकारिणी कल्याणी शुभ कर्मों को समर्पित,
मंगल मूल आर्य संस्कृति के लिये आप हैं अर्पित।।
आज आ गई घड़ी विदा की कैसे सहें आघात,
सजल मन है सज़ल नैना मुख से निकले न बात।
क्षमाशीले! क्षमा करना ही तुम्हारी प्रकृति है,
बार-बार अपराध करना हम सबकी निर्यात है।
आप जहां भी रहें सदा हो मंगल की बरसात,
दीदी आप को लगे न कभी कोई व्यथा की आंच।
जाते-जाते हमारी सब भूले, भूल जाना आप,
एक बार सरल हृदय से आशीर्वाद देना आप।।

डॉ. सत्या सक्सेना 'वंचिता'
राजकीय बालिका इन्टर कॉलेज,
टूण्डला (आगरा)

प्रकाशवती रत्ना के जीवन के आदर्श

१. उनके जीवन का मूलमंत्र "Forgive and forget" जैसे अन्य सूत्रों का भरसक प्रयत्न करती थीं। उनमें दृढ़ विश्वास था। वह मानती थीं कि जहाँ विश्वास है, वहीं सार्थक प्रार्थना वास करती है। जहाँ प्रार्थना है, वहाँ प्रेम है। जहाँ प्रेम है, वहाँ शांति है। जहाँ शांति है, वहाँ सत्य है, जहाँ सत्य है, वहीं श्रद्धा है, जहाँ श्रद्धा है, वहाँ ईश्वर है और अन्त में जहाँ ईश्वर है, वहाँ उसका आनन्द है। ईर्ष्या और द्वेष का उत्तर सदैव प्रेम व शांति से देती थीं। वह कभी बात नहीं बढ़ाती थीं, अपतु बहस के स्थान पर शांति प्रदर्शित करती थीं। न मुसकराना ही पर्याप्त संकेत दे देती थी।

२. दूसरों के दोष को ओढ़ लेती थीं। वहीं पर उन्हें सदैव स्मरण हो आता था: सन्ध्या में छः परिक्रमा मन्त्रों का अधो भाग जो शांतिदायक होता था: **एभ्यो अस्तु यो३अस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तम् वो जम्भे दध्मः॥** अधिक बात न करके उस व्यक्ति से अभिवादन-नमस्ते करना न भूलती थें।

३. यह बात सही है कि अपने पुत्र के वियोग में बहुत दुःखी थीं परन्तु १९९२ से उनमें विरक्ति का आभास होता था। वैसे जीवनभर कभी परिग्रह का भाव नहीं रहा परन्तु जीवन के अन्तिम दशक में अपरिग्रह, सन्तोष, तपश्चर्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान की दिव्यता का जीवन में आभास होता था।

४. सूझबूझ और समझ की तत्परता उनका एक बहुमूल्य गुण था। पहले तोलती थीं और फिर अकाट्य तर्क संगत बात करके विपक्षी को निरुत्तर कर देती थीं। कई बार उनका तर्क पहले समझ नहीं आता था परन्तु अन्ततोगत्वा उनके कथन की गहनता हृदयग्राही होती थी।

५. उनका अध्ययन विशिष्ट बिन्दुओं की ओर होता था। यही कारण था कि इस गुण के कारण उन्होंने एम.ए. परीक्षा में महिलाओं में प्रथम एवं प्रथम श्रेणी के स्थान प्राप्त कियें।

६. धर्म परायणा थीं और यज्ञ में पूर्ण आस्था थी। प्रतिदिन दैनिक कार्यक्रम दिव्य यज्ञ से प्रारंभ करतीं, अपनी कुटिया में छोटी सी यज्ञशाला में सम्पन्न होता था। वेदमंत्र के प्रथम भाव को आत्मसात किये हुई थीं:

यस्मै त्वम् वसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वति। (ऋ० ८-५-६)

हे बसाने वाले परमेश्वर! आप जिस साधक ने गुण ग्रहण के लिये सुपात्रता अर्जित कर ली है, उसे आप गुणों व ऐश्वर्यों का वरदान वैसे ही दे देते हैं।

७. धैर्य, क्षमा, वासनाओं को वश में रखना, सदैव सत्य के मार्ग का अनुकरण करना, विचारों की पावनता, इन्द्रियों को वश में रखना, प्रखर बुद्धि तथा ज्ञानामृत की उपलब्धि को लक्ष्यान्वित करना, अक्रोध की भावना को सम्मुख रखने का भरसक प्रयत्न करना-यह सब उनके स्वभाव के अंग थे। मानव होने के नाते भूल सुधार कर लेती थीं।

(छपते-छपते)

स्वनामधन्य माता प्रकाशवती रत्ना

वात्सल्यमयी माता आदरणीया प्रकाशवती रत्ना हमारे बीच में नहीं रहीं। लेकिन उनकी मधुर स्मृतियाँ आज भी हमारे हृदय में विद्यमान हैं। मुझ पर तो व्यक्तिगत रूप से उनके स्नेह की वर्षा सदैव होती रही। आर्य वानप्रस्थाश्रम में, आर्य समाज और भारत विकास परिषद के काम से जब भी उनके निवास पर गया उनका मुस्कराता चेहरा सामने नज़र आया। अनेक बार तो आचार्य विद्यारत्न जी एवं वह मंत्रों का भावार्थ निकालने में उलझे हुए पाए गए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सादा जीवन और उच्च विचार के सिद्धांत को अपनाने वाली इस माता के सम्पर्क में जो भी आया वह उनका बनकर रह गया।

स्वनामधन्य माता प्रकाशवती रत्ना केवल शिक्षा की प्रसारिका ही नहीं थीं अपितु वैदिक संस्कृति की प्रखर प्रवक्ता भी थीं। वैदिक धर्म के प्रचार में उन्होंने अनुकरणीय योगदान दिया और उसी काम को पूरा करते-करते अपने जीवन की पूर्णाहुति दे दी। उन्होंने जीवन भर अपने पति आचार्य विद्यारत्न जी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर आध्यात्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में निष्काम एवं समर्पित भावना से समाज की महती सेवा की। आर्यसमाज के साथ-साथ भारत विकास परिषद् के कार्यक्रमों में विशेष रूप से **भारत जानो** प्रश्न मंच के समय उनकी सक्रिय व प्रभावी भूमिका हमेशा ही उनका स्मरण कराती रहेगी।

मैं अब जब भी आश्रम में उनके कमरे में जाता हूँ उनकी मुस्कराती हुई चेहरे वाली फोटो सामने दिखाई देती है। मुझे ऐसा लगता है कि वह कह रही हों कि बेटे! मेरे अधूरे कार्यों को आचार्य जी के साथ मिलकर अवश्य पूरा करना यही मेरा तुम्हें आशीर्वाद है।

(देवराज)

प्रधान, आर्य उप प्रतिनिधि सभा,
हरिद्वार जनपद



काश त्ता बेटियों के साथ

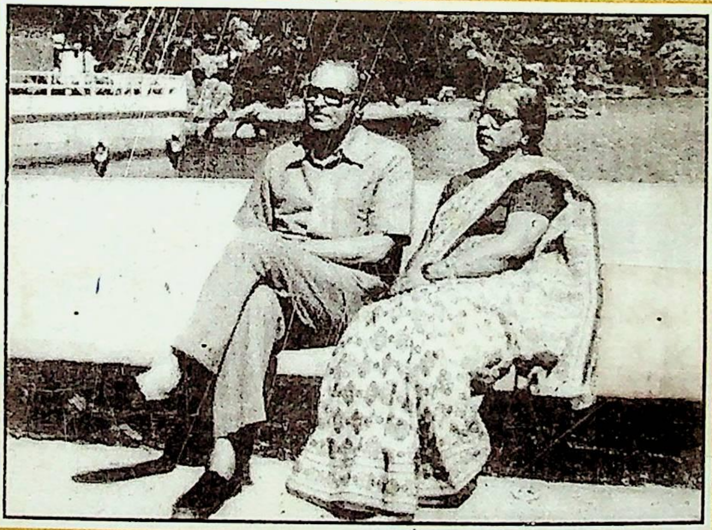


अपने भाई की पुत्र वधू एवम् पोती, दोहते और पोते को सुसंस्कृत करते हुए

अपने भाई की पुत्र वधू एवम् पोती, दोहते और पोते को
सुसंस्कृत करते हुए ...



पति पत्नी जीवन के मध्य सवन में



नक्की झील, माउण्ट आबू, पर्यटक के रूप में
प्रकाशवती रत्ना एवं उनके पति आचार्य विद्या रत्न